पहली बार २०००
सन १६३५
मूल्य दस आना

पूज्य मालवीयजी की अपील

"'सस्ता साहित्य मण्डल' ने हिन्दी में उच्चकोटि की सस्ती पुस्तकें निकालकर हिन्दी की बड़ी सेवा की है। सर्वसाधारण को इस संस्था की पुस्तकें लेकर इसकी सहायता करनी चाहिए।"

मदनमोहन मालवीय

मुद्रक
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
दिल्ली

प्रस्तावना

आचार्य काका कालेलकरने एक जगह लिखा है कि, "बुद्ध-भगवान् की शिक्षा आज के युग के लिए विशेष रीति से अनुकूल है, विशेष रीति से पोपक है।" ससार मे आज हर चीज का बडी वारीकी से विश्लेपण हो रहा है। विश्लेषण की कसौटी पर जो चीज खरी नही उतरती, उसे अपनाने क्या छूनेतक मे दुनिया अब आनाकानी करने लगी है। मानवता के मूल मे ओतप्रोत धर्म फिर इस व्यापक छानबीन से, इस बौद्धिक क्राति से अछूता कैसे रह सकता था? ससार के छोटे-बडे धर्म-मजहबो का भी इधर कुछ वर्षो से स्वतत्र दृष्टि से विश्लेषणात्मक अध्ययन होने लगा है। और इसीसे काका कालेलकरने वर्तमान शताब्दी को 'धर्म-मन्थन-काल' कहा है। इस धर्म-मन्थन-काल मे इलहाम का 'आर्डिनेन्स' मानने को आज मनुष्य की आत्मा तैयार नही, यद्यपि

कभी-कभी अघ-अश्रद्धावश आवेश मे वह अविवेक का भी प्रदर्शन कर बैठती है। शुद्ध बौद्धिक कसौटी पर कसते समय यह देखा जाता है कि वह धर्म समभाव और समन्वय का कहातक समर्थक है, वैपम्य और द्वेष की आग को वह उत्तेजन तो नही दे रहा है, और सर्वसाधारण का 'कल्याण' उसके द्वारा कहातक सपादित होता है। किन्तु इस धर्मतुला को मै एकदम नई कसौटी कहने के पक्ष मे नही हूँ। धर्म की यह तराजू उतनी ही प्राचीन है, जितनी प्राचीन कि हमारी प्रज्ञा है। कई सदियोतक हमारे अधर्ममूलक तअम्सुवने इस अनमोल चीज को ओझल जरूर कर रखा था, और कुछ अशो मे आज भी कर रखा है, पर जगत् के क्रातदर्शी सतो और महा पुरुषोने अपना शोधन-कार्य तो सदा जारी ही रखा। समय-समय पर उन्होने मनुष्य की बुद्धि पर पडा हुआ वह विभेदक पर्दा उठाया और उससे कहा कि—"देख, धर्म का सच्चा सनातनरूप यह है, एष धर्मः सनातनः।" भगवान् बुद्धने तो अत्यत स्पष्ट शब्दो मे कह दिया था कि, "आओ, और अपनी 'प्रज्ञा की ऑख से' धर्म को देखो—एहि पश्यक धर्म।" यही कारण है कि बुद्ध भगवान् की शिक्षा आज के युग के लिए विशेष रीति से अनुकूल है और विशेष रीति से पोषक है।

जहा अन्य धर्मोने पात्र मे रखी जानेवाली 'वस्तु' के विवेचन मे अपने दार्शनिक ज्ञान की सारी पूजी खर्च कर डाली है, वहा बौद्धधर्म मे पात्र की सम्यक् शुद्धि पर ही सब से अधिक जोर दिया गया है, और यही इस मानवधर्म की सबसे बडी विशेषता है। और इसीसे आस्तिक और नास्तिक दोनो ही इस कल्याण मूलक धर्म में समान समाधान पाते हैं। कोई विवाद नही, कोई

कलह नही। अष्टागिकमार्गी या अन्त शुद्धि का साधक द्वेपमूलक वाद-विवाद से अलग ही रहेगा। मैत्री, मुदिता और करुणा के शीतल जल मे जिस मनुष्यने अपना रोम-रोम भिगो लिया है, वह विवाद, द्वेप और कलह की कभी कल्पना भी नही कर सकता। वह किसके साथ तो राग करे और किसके साथ द्वेष?

यह सही है कि रूढिप्रिय मनुष्य की अतडियो के घातक फोड़े मे बुद्ध भगवान्‌ने नश्तर लगाया था, और उससे वह एक-वार क्रुद्ध हो चीख उठा था। पर वहा भी भगवान् की असीम करुणा काम कर रही थी। उन्हे तो तृष्णा-शल्याविद्ध मनुष्य के अतर की पीडा हरनी थी, उसका सारा सडा मवाद निकालना था, उसका हृदय-घट शुद्ध करना था। रोगी के प्रलाप और अभिशाप से भगवान् डर जाते तो उसे 'ब्रह्मविहार' का आनद-लाभ कैसे होता? पीछे, जब आखे खुली तो अपने महाकारुणिक चिकित्सक को उसने जगत् का उद्धारक ही नही, ईश्वर का अवतार तक माना, और उसकी श्रद्धावनत अतरात्मा से बरबस ये शब्द निकल पडे—

बुद्धं शरणं गच्छामि;
धर्मं शरणं गच्छामि;
संघं शरणं गच्छामि।

× × × ×

समय के फेर से बौद्धधर्म आज अपनी जन्मभूमि भारत में प्रत्यक्ष नही दिखाई देता, पर यह नही कहा जा सकता कि उसका सर्वथा लोप हो गया है। हमारे राष्ट्र पर, हमारे जीवन पर आज भी उस महान् मानवधर्म की अमिट छाप लगी हुई है। भले ही

हम अपने को प्रत्यक्ष मे बौद्ध न कहे, पर बौद्धधर्म का प्रेरणाप्रद प्रभाव हम भारतवासियो के जीवन मे परोक्षत कुछ-न-कुछ काम तो कर ही रहा है। प्रयाग मे आज तीसरी नदी का प्रत्यक्ष दर्शन कहा होता है, पर त्रिवेणी के एक-एक कण का महत्व और अस्तित्व उस लुप्तधारा सरस्वती की ही बदौलत बना हुआ है।

पर इस तरह आत्म-सतोष कर लेने से काम नही चलेगा। भगवान् बुद्ध का हमारे ऊपर बहुत बडा ऋण है। बौद्ध-वाङ्मय के प्रति हमारी यह भारी उदासीनता सचमुच अक्षम्य है। हमारी राष्ट्रभाषा का बौद्ध-साहित्य के प्रकाशन मे तीसरा नबर आता है। यह हमारे लिए भारी लज्जा और दु ख का विषय नही तो क्या है? बगभाषा का बौद्ध-साहित्य के प्रकाशन मे प्रथम स्थान है। उसके बाद मराठी का नबर है। मराठी मे आचार्य धर्मानन्द कौशाबीने बडी योग्यता और विद्वत्तापूर्वक अनेक पाली ग्रन्थो का अत्यत सुदर अनुवाद किया है। कौशाबीजी के कुछ बौद्ध ग्रन्थो का गुजराती भाषातर भी प्रकाशित हो चुका है। हिंदी मे तो दो-तीन साल पहले, सिवा चार-पाच बुद्ध-जीवनियो और धम्मपद के तीन-चार अनुवादो के, कुछ था ही नही। इधर बेशक इस दिशा मे हिंदीने अच्छी प्रगति की है। महापडित त्रिपिटकाचार्य श्री राहुल साकृत्यायनने समस्त 'त्रिपिटक' (सुत्तपिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक) का हिंदी-अनुवाद करने का निश्चय किया है। 'मज्झिम निकाय' का अनुवाद तो प्रकाशित भी हो गया है। श्री राहुल साकृत्यायन द्वारा सकलित 'बुद्धचर्या' भी हिंदी मे एक अद्वितीय ग्रन्थ है। श्री साकृत्यायनजी का सपादित आचार्य वसुबधु-रचित 'अभिधर्मकोश' भी प्रकाशित हो चुका है। यदि

यही क्रम जारी रहा तो श्री साकृत्यायनजी के कथनानुसार मूल बौद्ध-साहित्य के अनुवाद मे हिंदी का स्थान भारतीय भापाओ मे ही प्रथम नही हो जायगा, बल्कि हमारी मातृभापा यूरोपीय भापाओ से टक्कर लेने लगेगी।

अव दो शब्द प्रस्तुत पुस्तक पर। धम्मपद का मैं एक जमाने से भक्त हूँ। इधर श्रीधर्मानन्द कौशावी और श्री राहुल साकृत्यायन के अनुवादित ग्रन्थ देखकर तो मैं 'कुसलस्स उपसपदा' वाले बुद्ध-शासन पर आशिक हो गया हूँ। 'सुत्तनिपात' तो दो वार पूरा पढा, तो भी तृप्ति नही हुई। पुस्तक पढते समय अपने अत्यत प्रिय स्थलो पर निशान लगाने की मेरी पुरानी आदत है। पढते-पढते मुझे सूझा कि भगवान् बुद्ध की सूक्तियो का लगे हाथो एक छोटा सा विपयवार सग्रह क्यो न कर डाला जाय? मित्रो मे चर्चा की तो उन्होने मुझे प्रोत्साहन दिया। उसी इच्छा और प्रोत्साहन का परिणाम यह 'बुद्धवाणी' नामक सूक्ति-सग्रह है।

आरभ मे आर्यसत्य-चतुष्टय, अष्टागिक मार्ग, स्मृत्युपस्थान आदि बौद्धधर्म के मूल विषय कदाचित् पाठको को ऊपर से कुछ नीरस से लगे, पर जरा मनोयोगपूर्वक पढेगे तो इन दार्शनिक सूक्तियो मे उन्हे आत्म-तृप्तिकर आनद-रस मिले विना न रहेगा। अत मे 'सूक्तिकण' नामक एक खड है, जिसमे विविध विपयो की सूक्तियो का सग्रह किया गया है। पाठको से मेरा आग्रह है कि सूक्ति-कण को वे अवश्य आद्योपान्त पढे।

कोन सूक्ति किस ग्रन्थ से ली गई है इसका निर्देश मैंने प्रत्येक सूक्ति-सग्रह-विभाग के अत में कर दिया है। पुस्तक के अत मे

बौद्ध-साहित्य मे प्रयुक्त खास-खास पारिभाषिक शब्दो का एक संक्षिप्त कोश भी दे दिया है।

'बुद्ध-वाणी' ने लोगो के हृदय मे यदि बौद्ध-वाङ्मय के निर्मल सरोवर मे अवगाहन करने की जरा भी लालसा जगाई तो मै अपना यह तुच्छ प्रयास सफल समझूगा।

दिल्ली,
श्रावण, स० १९९२

वियोगी हरि

ग्रन्थ-संकेत-निर्देश

म. नि.	=	मज्झिम निकाय (राहुल साकृत्यायन)
दी नि.	=	दीघ निकाय
अ नि.	=	अगुत्तर निकाय
सं. नि.	=	संयुत्त निकाय
ध प.	=	धम्मपद
सु नि.	=	सुत्त निपात (धर्मानन्द कौशाबी-गुजराती संस्करण)
बु च	=	बुद्धचर्या (राहुल साकृत्यायन)
बु ली	=	बुद्धलीला (धर्मानन्द कौशाबी-गुजराती संस्करण)
बु दे	=	बुद्धदेव (जगन्मोहन वर्मा)

विषय-निर्देश

बुद्ध-वाणी

भगवान् बुद्ध

नमो तस्स भगवतो
अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

卐

बुद्धं सरणं गच्छामि
धम्मं सरणं गच्छामि
संघं सरणं गच्छामि

बुद्ध-वाणी

बुद्ध-शासन

१. सारे पापो का न करना, 'कुशल धर्मो,' अर्थात् पुण्यो का सचय करना, और अपना चित्त परिशुद्ध रखना—यही बुद्धों की शिक्षा है।

*

---

१. सब्ब पापस्स अकरण
कुसलस्स उपसपदा,
सचित्त परियोदपन
एत, बुद्धान सासन।

२. बुद्धों की यह शिक्षा है :—

(१) निंदा न करना;

(२) हिंसा न करना;

(३) आचार-नियम-द्वारा अपने को संयत रखना;

(४) मित भोजन करना,

(५) एकांत में वास करना,

(६) चित्त को योग में लगाना।

---

२. अनुपवादो अनुपघातो,
पातिमोक्खे च संवरो,
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं
पतञ्च सयनासनं।
अधिचित्ते च आयोगो
एतं बुद्धान सासनं।

१—२. ध. प. (बुद्धवग्गो)

महामंगल

१. मूर्खो के सहवास से दूर रहना, सत्पण्डितो का सत्सग करना, और पूज्यजनो को पूजना ही उत्तम मगल है।

२. अनुकूल प्रदेश का वास, पुण्यो का सचय और सन्मार्ग मे मन की दृढता—यही उत्तम मगल है।

३. विद्या और कला का सपादन, सद्व्यवहार का अभ्यास तथा समयोचित भाषण—यही उत्तम मगल है।

४. माता-पिता की सेवा, स्त्री-पुत्रादि की सँभाल और व्यवस्थित रीति से किये हुए कर्म—यही उत्तम मगल है।

५. आदर, नम्रता, सतुष्टि, कृतज्ञता और बारबार सद्धर्म का सुनना—यही उत्तम मगल है।

६. क्षमा, मधुर भाषण, सतो का सत्सग और बारबार धर्मचर्चा—यही उत्तम मगल है।

७. तप, ब्रह्मचर्य, आर्यसत्यो* का ज्ञान तथा निर्वाणपद का साक्षात्कार—यही उत्तम मगल है।

---

*दु:ख, दु:ख-समुदय, दु:ख-निरोध और दु ख-निरोध का मार्ग, इन चार सत्यों को भगवान् बुद्धने 'आर्यसत्य-चतुष्टय' कहा है।

१—७. सु. नि. (महामगल सुत्त).

आर्यसत्य-चतुष्टय

१. पहला आर्यसत्य दुःख है। जन्म दुख है, जरा दुख है, व्याधि दुख है, मृत्यु दुख है, अप्रिय का मिलना दुख है, प्रिय का बिछुडना दुख है, जिसे चाहे वह न मिले तो वह भी दुख है। सक्षेप में, रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार और विज्ञान यह पचोपादान स्कध (समुदाय) ही दुख है।

२. **दुःखसमुदय** नाम का दूसरा आर्यसत्य यह तृष्णा है, जो पुनर्भवादि दुख का मूल कारण है। यह तृष्णा राग के साथ उत्पन्न हुई है। सासारिक उपभोगो की तृष्णा, स्वर्गलोक मे जाने की तृष्णा, और आत्महत्या करके ससार से लुप्त हो जाने की तृष्णा इन तीन तृष्णाओ से मनुष्य अनेक तरह का पापाचरण करता है और दुख भोगता है।

३. तीसरा आर्यसत्य **दुःखनिरोध** है। यह प्रतिसर्गमुक्त और अनालय है। तृणा का निरोध करने से निर्वाण की प्राप्ति होती है, देहदड या कामोपभोग से मोक्षलाभ होने का नही।

४. चौथा आर्यसत्य **दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा** है। इसी आर्यसत्य को **अष्टांगिक मार्ग** कहते है। वे अष्टाग ये है —

(१) सम्यक् दृष्टि,

(२) सम्यक् सकल्प,

(३) सम्यक् वचन,

(४) सम्यक् कर्मान्त,

(५) सम्यक् आजीव,

(६) सम्यक् व्यायाम,

(७) सम्यक् स्मृति,

(८) सम्यक् समाधि।

दु ख का निरोध इसी मार्ग पर चलने से होता है।

५. दुःख नामक पहला आर्यसत्य पूर्व धर्मो मे नही सुना गया था। यह दु ख नामक आर्यसत्य **परिज्ञेय** है।

६. **दुःखसमुदय** नाम का दूसरा आर्यसत्य पूर्व धर्मो मे कभी नही सुना गया था। यह दु खसमुदय नाम का आर्यसत्य **त्याज्य** है।

७. **दुःखनिरोध** नाम का तीसरा आर्यसत्य पहले के धर्मो में नही सुना गया था। यह दु खनिरोध नाम का आर्यसत्य **साक्षात्करणीय कर्तव्य** है।

८. **दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा** नाम का चौथा आर्यसत्य पूर्व धर्मो मे नही सुना गया था। यह दु खनिरोधगामिनी प्रतिपदा नामक आर्यसत्य **भावना करनेयोग्य** है।

९. इस 'आर्यसत्य-चतुष्टय' से मेरे अतर में चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक की उत्पत्ति हुई।

१०. जब से मुझे इन चारो आर्यसत्यो का यथार्थ सुविशुद्ध ज्ञानदर्शन हुआ, तब से मैंने देवलोक में, मारलोक मे, श्रमण-जगत् और ब्राह्मणीय प्रजा मे, देवो और मनुष्यो मे यह प्रगट किया कि मुझे अनुत्तर सम्यक् सबोधि* प्राप्त हुई और मै **अभिसंबुद्ध**

---

* परमज्ञान, मोक्षज्ञान

हुआ, मेरा चित्त निर्विकार और विमुक्त हो गया। और यह अब मेरा अंतिम जन्म है।

११. परिव्राजक को इन दो अंतों (अतिसीमा) का सेवन नही करना चाहिए। वे दोनो अंत कौन है? पहला अंत है काम-वासनाओ मे कामसुख के लिए लिप्त होना। यह अंत अत्यंत हीन, ग्राम्य, अध्यात्ममार्ग से हटा देनेवाला, अनार्य्य और अनर्थकारी है। दूसरा अंत है शरीर को दंड देकर दुःख उठाना। यह भी अनार्यसेवित और अनर्थयुक्त है। इन दोनो अंतो को त्यागकर **मध्यमा प्रतिपदा** (अष्टांगिक मार्ग) का मार्ग ग्रहण करना चाहिए। यह मध्यमा प्रतिपदा चक्षुदायिनी और ज्ञानप्रदायिनी है। इससे उपशम, अभिज्ञान, संबोधन और निर्वाण प्राप्त होता है।

१—११ बु च. (धर्मचक्रप्रवर्तन सूत्र)

अष्टांगिक मार्ग

१ सम्यक् दृष्टि, सम्यक् सकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि, यह आर्य अप्टागिक मार्ग है।

२. **सम्यक् दृष्टि,** दु ख का ज्ञान, दु खोदय का ज्ञान, दु ख-निरोध का ज्ञान और दु खनिरोध की ओर ले जानेवाले मार्ग का ज्ञान, इस आर्यसत्य-चतुष्टय के सम्यक् ज्ञान को सम्यक् दृष्टि कहते है।

३. **सम्यक् संकल्प,** निष्कर्मता-सवधी, अर्थात् अनासक्ति सवधी सकल्प, अहिंसासवधी सकल्प, और अद्रोहसवधी सकल्प को सम्यक् सकल्प कहते है।

४. **सम्यक् वचन,** असत्य वचन छोडना, पिशुन वचन अर्थात् चुगलखोरी छोडना, कठोर वचन छोडना और वकवाद छोडना सम्यक् वचन है।

५. **सम्यक् कर्मान्त** प्राणिहिंसा से विरत होना, बिना दी हुई वस्तु न लेना और कामोपभोग के मिथ्याचार (दुराचार) से विरत होना ही सम्यक् कर्मान्त है।

६. **सम्यक् आजीव,** आजीविका के मिथ्या साधनो को छोडकर अच्छी सच्ची आजीविका से जीवन व्यतीत करना सम्यक् आजीव है।

७. **सम्यक् व्यायाम,** 'अकुशल' धर्म, अर्थात् पाप उत्पन्न न होने देने के लिए निश्चय करना, परिश्रम करना, उद्योग करना,

चित्त को पकडना और रोकना तथा कुशल धर्म, अर्थात् सत्कर्म की उत्पत्ति, स्थिति, विपुलता और परिपूर्णता के लिए निश्चय, उद्योग आदि करना ही सम्यक् व्यायाम है।

८. **सम्यक् स्मृति**, अशुचि, जरा, मृत्यु आदि दैहिक धर्मो का अनुभव करना तथा उद्योगशील अनुभवज्ञानयुक्त हो लोभ और मानसिक सताप को छोडकर जगत् मे विचरना ही सम्यक् स्मृति है।

९. **सम्यक् समाधि**, कुशल धर्मो अर्थात् सन्मनोवृत्तियो मे समाधान रखना ही सम्यक् समाधि है।

१०. इस सम्यक् समाधि की प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ध्यानरूपी चार पगडडिया है।

पहले ध्यान मे, वितर्क, विचार, प्रीति (प्रमोद) सुख और एकाग्रता का प्राधान्य होता है।

दूसरे ध्यान में, वितर्क और विचार का लोप हो जाता है, प्रीति, सुख और एकाग्रता इन तीन मनोवृत्तियो का ही प्राधान्य रहता है।

तीसरे ध्यान मे, प्रीति का लय हो जाता है, केवल सुख और एकाग्रता की ही प्रधानता रहती है।

चौथे ध्यान में, सुख भी लुप्त हो जाता है, उपेक्षा और एकाग्रता का ही प्राधान्य रहता है।

*

११. अमृत की ओर ले जानेवाले मार्गो मे अष्टागिक मार्ग परम **मंगलमय मार्ग** है।

*

१२. दुख आर्यसत्य, दुख-समुदय आर्यसत्य, दुखनिरोध आर्यसत्य और दुखनिरोधगामिमार्ग आर्यसत्य, इन चार आर्य-सत्यो का ज्ञान न होने से युगानुयुगोतक हम सब लोग ससृति के पाश में बँधे पडे थे। किन्तु अब इन आर्यसत्यो का बोध होने से हमने दुख की जड खोद निकाली है, और हमारा पुनर्जन्म से छुटकारा हो गया है।

१—१० दी नि (महासतिपट्ठान सुत्त) ११ म नि. (मागन्दिय सुत्तन्त) १२ दी नि (महापरिनिब्बाण सुत्त)

जागृति के चार साधन

(चार स्मृत्युपस्थान)

१ शुद्ध होने के लिए, शोक और दु ख से तरने के लिए, दौर्मनस्य (मानसिक दु ख) का नाश करने के लिए, सन्मार्ग प्राप्त करने के लिए और निर्वाणपद का अनुभव लेने के लिए चार स्मृति-उपस्थानो का मार्ग ही एकमात्र सच्चा मार्ग है ।

२ चार स्मृति-उपस्थान ये है —

(१) अपनी देह का यथार्थ रीति से अवलोकन करना,

(२) वेदना* का यथार्थ रीति से अवलोकन करना,

(३) चित्त का यथार्थ रीति से अवलोकन करना,

(४) मनोवृत्तियो का यथार्थ रीति से अवलोकन करना।

ये चार स्मृति-उपस्थान अर्थात् जागृति के श्रेष्ठ साधन है ।

३ अरण्य मे वृक्ष के नीचे अथवा एकान्त मे पालथी मारकर गर्दन से कमरतक शरीर सीधा रखकर जो भिक्षु जागृत अन्त -करण से श्वास खीचता है और प्रश्वास वाहर निकालता है, उसका आश्वास और प्रश्वास दीर्घ है या ह्रस्व इसकी जिसे पूर्ण स्मृति होती है, जागृतिपूर्वक जो अपने प्रत्येक आश्वास-प्रश्वास का अभ्यास करता है, वह अपने आश्वास-प्रश्वास को भली भाति जानता है ।

---

*इन्द्रिय और विषय के एकसाथ मिलने के बाद जो दु.ख-सुख आदि विकार उत्पन्न होता है ।

जिस प्रकार वह आश्वास और प्रश्वास को सम्यक् रीति से जानता है, उसी प्रकार वह अपनी देह का यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

४ जाते समय वह यह स्मरण रखता है कि 'मैं जा रहा हूँ'; खडा होता है तो 'मैं खडा हूँ' यह स्मरण रखता है, जब बैठा होता है तब यह स्मरण रखता है कि 'मैं बैठा हूँ'; बिस्तरे पर पडा होता है तो 'मैं बिस्तरे पर पड़ा हुआ हूँ,' यह स्मरण रखता है। उसे देह की समस्त क्रियाओ का ज्ञान होता है।

इस तरह वह अपनी देह का यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

५ वह अपनी देह का नख से शिखतक अवलोकन करता है। केश, रोम, नख, दन्त, त्वचा, मास,स्नायु,अस्थि, मज्जा, मूत्राशय, कलेजा, यकृत, तिल्ली, फेफड़े, आत,अतडिया, विष्ठा, पित्त, कफ, पीब, रक्त, पसीना, मेद, आसू, चरबी, थूक, लार और मूत्र ऐसी-ऐसी अपवित्र चीजें इस देह में भरी हुई है।

कायानुपश्यी योगी अपनी देह मे भरे हुए इन तमाम अपवित्र पदार्थों का उसी प्रकार एक-एक करके अवलोकन करता है, जिस प्रकार कि हम विविध अनाजो की पोटली को खोलकर देख सकते है, कि इसमें यह चावल ह, यह मूग है, यह उडद है, यह तिल है और यह धान है।

६ वह कायानुपश्यी भिक्षु मरघट मे जाकर अनेक तरह के मुर्दों को देखता है। कोई मुर्दा सूजकर मोटा हो गया है, किसी मुर्दे को कौओ, कुत्तो, और सियारोंने खाकर और नोच-नाचकर छिन्न-भिन्न कर डाला है, तो किसी की केवल शख-सी सफेद हड्डिया

हो पडी हुई है। ऐसे भयावने मुर्दों की तरफ देखकर वह यह विचार करता है कि 'मेरी देह की भी एक दिन यही गति होनी है। यह हो नही सकता, कि मेरी देह इस नश्वर स्थिति से मुक्त हो जाय।'

वह यह स्मरण रखता है कि यह देह जब पैदा हुई है तब एक-न-एक दिन तो इसका नाश होगा ही। देह नाशवान् है इसका उसे हमेशा स्मरण रहता है।

वह अनासक्त हो जाता है। दुनिया मे किसी भी वस्तु की उसे आसक्ति नही रहती।

इस प्रकार वह अपनी देह का यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

७ कोई भिक्षु अपनी वेदनाओ का यथार्थरीति से अवलोकन करता है। जब वह सुखकारी वेदना का अनुभव करता है, तो वह समझता है कि मै सुखद वेदना का अनुभव कर रहा हूँ।

और जब दु खकारी वेदना का अनुभव करता है, तब वह समझता है कि मै दु खद वेदना का अनुभव कर रहा हूँ।

जब वह सुख-दु खरहित वेदना का अनुभव करता है, तब वह समझता है कि मै सुख-दु खरहित वेदना का अनुभव कर रहा हूँ।

उसे इस बात का स्मरण रहता है कि वह इस वेदना का लोभ से अनुभव कर रहा है या अलोभ से।

इस प्रकार वह आन्तरिक और बाह्य वेदना का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है। वह देखता है कि वेदना जब पैदा हुई है तब नाश उसका अवश्य होगा।

उसे यह स्मरण रहता है कि उसके अग मे वेदना है।

स्मृति और ज्ञान प्राप्त करने के लिए वह वेदनानुपश्यी योगी अनासक्त हो जाता है। इस लोक की किसी भी वस्तु मे वह आसक्ति नही रखता।

८ कोई भिक्षु अपने चित्त का यथार्थरीति से अवलोकन करता है। मेरा चित्त सकाम है या निष्काम, सद्वेष है या विगत-द्वेप, समोह है या वीतमोह, सक्षिप्त है या विक्षिप्त, समाहित (एकाग्र) है या असमाहित, विमुक्त है या अविमुक्त, आदि सभी अवस्थाओ को वह जानता है। इस प्रकार उसे अपने और पराये चित्त का परिज्ञान हो जाता है।

वह जानता है कि चित्त का स्वभाव चचल है। चित्त ऐसा क्यो है, इसकी उसे स्मृति होती है।

केवल स्मृति और ज्ञान प्राप्त करने के लिए वह किसी भी वस्तु मे आसक्ति नही रखता। इस प्रकार वह चित्तानुपश्यी भिक्षु चित्त का यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

९. कोई भिक्षु अपनी मनोवृत्तियो का यथार्थरीति से अवलोकन करता है। वह इस वात की ठीक-ठीक शोध करता है कि उसके अत करण मे कामविकार, द्वेषवृद्धि, आलस्य, अस्वस्थता और सशय, ये ज्ञान के पाच आवरण है या नही।

इन आवरणो की उत्पत्ति कैसे होती है, इनके उत्पन्न होने पर इनका विनाश किस तरह किया जाता है, और इनके फिर से उत्पन्न न होने का क्या उपाय है, इस सव को वह जानता है।

इस प्रकार इन पाच मनोवृत्तियो का वह यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

१०. फिर वह पाच स्कन्धो का यथार्थरीति से अवलोकन

करता है। रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार और विज्ञान इन पाच स्कन्धो का उदय और अस्त कैसे होता है यह वह जानता है।

इस प्रकार वह धर्मानुपश्यी भिक्षु आभ्यतर और वाह्य स्कन्धो का यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

११. फिर वह चक्षु, रूप इत्यादि आध्यात्मिक और वाह्य आयतनो का यथार्थरीति से अवलोकन करता है। चक्षु और रूप, कर्ण और शव्द, नासा और गध, त्वचा और स्पर्श, मन और मनोवृत्ति इनके सयोग से कौन-कौन-से सयोजन पैदा होते है, और उनके उत्पन्न होने पर उन सयोजनो का नाश कैसे होता है, और सयोजन फिर उत्पन्न न हो इसका क्या उपाय है इस सवको वह जानता है।

१२. फिर वह सात वोध्यगो का यथार्थरीति से अवलोकन करता है। स्मृति, धर्मप्रविचय (धर्मसचय) वीर्य (उद्योग) प्रीति, प्रश्रब्धि (शाति), समाधि और उपेक्षा ये सात धर्म मेरे अत करण में है या नही यह वह जानता है। यदि नही है तो ये सवोध्यग किस प्रकार उत्पन्न किये जा सकते है, और उत्पन्न हुए सवोध्यगो को भावना के द्वारा किस प्रकार पराकाष्ठातक पहुँचाया जा सकता है, यह सव वह जानता है।

इस प्रकार वह भिक्षु आध्यात्मिक और वाह्य मनोवृत्तियो का यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

१३. इसके अतिरिक्त वह भिक्षु चार आर्यसत्यो का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है।

यह दु ख है, यह दु ख का समुदय है, यह दु ख का निरोध है और यह दु ख-निरोध का मार्ग है, यह वह यथार्थरीति से जानता है।

इस प्रकार वह भिक्षु आध्यात्मिक और बाह्य मनोवृत्तियो का यथार्थरीति से अवलोकन करता है।

१४. इन चार स्मृति-उपस्थानो की ऊपर कहे अनुसार सात वर्षतक भावना करने से भिक्षु को 'अर्हत्पद' की प्राप्ति हो जायगी। अधिक नही तो, वह 'अनागामी' तो हो ही जायगा, उसे फिर इस लोक मे जन्म नही लेना पडेगा।

१५ सात वर्ष जाने दो, ऊपर कहे अनुसार जो भिक्षु इन चार स्मृति-उपस्थानो की भावना छै वर्ष, पाच वर्ष चार वर्ष, तीन वर्ष, दो वर्ष, एक वर्ष, इतना भी तो नही, तो सात मास, छै मास, पाच मास, चार मास, तीन मास, दो मास, एक मास या सात ही दिन यथार्थरीति से करेगा, तो उसे 'अर्हत्पद' की प्राप्ति हो जायगी—और नही तो वह अनागामी तो हो ही जायगा।

१६. इन चार स्मृति-उपस्थानो का मार्ग शोक और कष्ट की विशुद्धि के लिए, दु ख और दौर्मनस्य के अतिक्रमण के लिए, सत्य की प्राप्ति के लिए और निर्वाण के साक्षात्कार के लिए **एकायन मार्ग** (निश्चित मार्ग) है।

१—१६ म नि (सतिपट्ठान सुत्तन्त)

सप्त धर्मरत्न

१ धर्म के इन सात रत्नो को तुम लोग अवश्य धारण करो—(१) स्मृत्युपस्थान, (२) सम्यक् प्रधान (प्रयत्न) (३) ऋद्धिपाद, (४) इन्द्रिय, (५) बल, (६) वोध्यग, और (७) मार्ग।

२. **स्मृत्युपस्थान** चार प्रकार का है—(१) शरीर अपवित्र है, (२) ससार की सभी वेदनाएँ दु खरूप है, (३) चित्त अनित्य है, और (४) ससार के समस्त पदार्थ अलीक अर्थात् क्षणिक है। इन चारो के स्मरण और भावना को चतुर्विध स्मृत्युपस्थान कहते हैं।

३. **सम्यक् प्रधान** चार प्रकार का है—(१) अर्जित पुण्य का सरक्षण, (२) अलब्ध पुण्य का उपार्जन, (३) पूर्व सचित पाप का परित्याग, और (४) नूतन पापो की अनुत्पत्ति का प्रयत्न।

४ **ऋद्धिपाद** अर्थात् असाधारण क्षमता की प्राप्ति के लिए (१) दृढ सकल्प, (२) चिता अर्थात् उद्योग, (३) उत्साह और (४) आत्मसयम करना।

५. इन्द्रिया पाच प्रकार की है—(१) श्रद्धा, (२) समाधि, (३) वीर्य, (४) स्मृति, और (५) प्रज्ञा।

६. **बल** भी पाच प्रकार का है—(१) श्रद्धाबल, (२) समाधिबल, (३) वीर्यबल, (४) स्मृतिबल, और (५) प्रज्ञाबल।

७. **बोध्यंग** सात प्रकार का है—(१) स्मृति, (२) धर्म-प्रविचय (धर्मान्वेषण) या पुण्य, (३) वीर्य, (४) प्रीति, (५) प्रश्रब्धि अर्थात् शांति, (६) समाधि, और (७) उपेक्षा।

८. **मार्ग** आठ प्रकार का है—(१)सम्यक् दृष्टि,(२)सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वचन, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम (७) सम्यक् स्मृति, और (८) सम्यक् समाधि।

९. इन सैंतीस पदार्थों को लेकर मैंने धर्म की व्यवस्था की है। इन्हे मैंने **'सप्तत्रिंशत् शिक्षमाण धर्म'** कहा है।

भिक्षुओ! तुम्हारा यह कर्तव्य है कि इस धर्म का श्रवण, मनन और निदिध्यासपूर्वक जगत् मे प्रचार करो।

१—९ दी नि (महापरिनिब्बाण सुत्त)

ब्रह्म-विहार

१. मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा—इन चार मनोवृत्तियो को 'ब्रह्मविहार' कहते है ।

२. मैत्रीपूर्ण चित्त से, करुणापूर्ण चित्त से, मुदितापूर्ण चित्त से और उपेक्षापूर्ण चित्त से जो भिक्ष चारो दिशाओ को व्याप्त कर देता है, सर्वत्र सर्वात्मरूप होकर समस्त जगत् को अवैर और अद्वेषमय चित्त से भर देता है उसे मै 'ब्रह्मप्राप्त' भिक्षु कहता हूँ ।

*

३ मैत्रीचित्तविमुक्ति की प्रेमपूर्वक इच्छा करने से, भावना करने से, अभिवृद्धि करने से, स्थापना करने से, उसका अनुष्ठान करने से और उसे उत्साहपूर्वक अगीकर करने से मनुष्य को ये ग्यारह लाभ होते है —

वह सुखपूर्वक सोता है, सुख से जागता है, बुरे स्वप्न नही देखता, सब का प्रिय होता है, भूत-पिशाचो का भय नही रहता, देवता उसकी रक्षा करते है, अग्नि, विष या हथयार उस पर कोई असर नही कर सकते, चित्त का तुरत समाधान हो जाता है, मुख की कान्ति अच्छी रहती है, शाति से मरता है, और, निर्वाण न भी मिले, तो भी मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मलोक को तो जाता ही है ।

*

४. विचारपूर्वक किये हुए कर्मो का फल विना भोगे नष्ट नही होता। इस लोक मे अथवा परलोक मे कृतकर्मो का फल भोगना ही पडता है। फिर इन कर्मो को जाने विना दु ख नष्ट नही होता। अत आर्यश्रावक (गृहस्थ) लोभ से, द्वेष से और मोह से विमुक्त होकर सचेत अत करण के द्वारा मैत्रीयुक्त चित्त से, करुणायुक्त चित्त से, मुदितायुक्त चित्त से और उपेक्षायुक्त चित्त से चारो दिशाओ को अभिव्याप्त कर देता है, अखिल जगत् को अवैर और द्वेषरहित मैत्रीसहगत चित्त से अभिव्याप्त कर देता है।

वह समझता है कि पूर्व मे इन भावनाओ के न करने से मेरा चित्त सकुचित था। पर अव उत्तम रीति से इस मैत्री भावना, इस करुणा भावना, इस मुदिता भावना और इस उपेक्षा भावना के करने से वह असीम और अनत हो गया है। जो भी मर्यादित कर्म मेरे हाथ से हुआ होगा, वह अव इन अमर्यादित भावनाओ के कारण शेष नही रह सकता, वह इन भावनाओ के सामने टिक नही सकता।

५. मनुष्य यदि छुटपन से ही मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षाचित्तविमुक्ति की भावना करे, तो उसके हाथ से पाप-कर्म होगा ही क्यो? और वह पाप नही करेगा, तो फिर उसे दु ख क्यो भागना पडेगा?

६. यह मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षाचितविमुक्ति की भावना क्या पुरुष क्या स्त्री सभी को करनी चाहिए।

१—२ अ. नि (चतुक्कनिपात) ३ अ. नि. (मेत्तसुत्त) ४—६. अ. नि. (दसक निपात)

सत्य

१. असत्यवादी नरकगामी होते है, और वे भी नरक में जाते है, जो करके 'नही किया' कहते है ।

२. जो मिथ्याभाषी है, वह मुडित होने मात्र से श्रमण नही हो जाता ।

*

३. जिसे जान-बूझकर झूठ बोलने में लज्जा नही, उसका साधुपना औंधे घडे के समान है, साधुता की एक बूद भी उसके हृदय-घट के अदर नही ।

४. जिसे जान-बूझकर झूठ बोलने मे लज्जा नही, उससे कौन-सा पाप-कर्म करने को बचा ? इसलिए, तू यह हृदय मे अकित कर ले, कि मै हँसी-मजाक में भी कभी असत्य नही बोलूगा ।

*

५. जितनी हानि शत्रु शत्रु की, और वैरी वैरी की करता है मिथ्या मार्ग का अनुगमन करनेवाला चित्त उससे कही अधिक हानि पहुँचाता है ।

*

६. सभा मे, परिषद् मे अथवा एकात मे किसी से झूठ न बोले, झठ बोलने के लिए दूसरो को प्रेरित न करे, न झूठ बोलने-वाले को प्रोत्साहन दे—इसलिए असत्य का सर्वांश मे परित्याग कर देना चाहिए ।

*

७. अगर कोई हमारे विरुद्ध झूठी गवाही देता है, तो उससे हमे अपना भारी नुकसान हुआ मालूम होता है। इसी तरह अगर असत्य भाषण से मै दूसरो की हानि करूँ, तो क्या वह उसे अच्छा लगेगा ? ऐसा विचार करके मनुष्य को असत्यभाषण का परित्याग कर देना चाहिए, और दूसरो को भी सत्य बोलने का उपदेश करना चाहिए। उसे तो सदा ईमानदारी की ही सराहना करनी चाहिए।

*

८. असत्य का कदापि आश्रय न ले। न्यायाधीशने गवाही देने के लिए बुलाया हो तो वहा भी जो देखा है उसी को कहे, कि मैंने देखा है, और जो बात नही देखी, उसे 'नही देखी' ही कहे।

*

९. सत्यवाणी ही अमृतवाणी है, सत्यवाणी ही सनातनधर्म है। सत्य, सदर्थ और सद्धर्म पर सतजन सदैव दृढ रहते हैं।

१०. सत्य एक ही है, दूसरा नही। सत्य के लिए बुद्धिमान् लोग विवाद नही करते।

११. ये लोग भी कैसे है! साप्रदायिक मतो मे पडकर अनेक तरह की दलीले पेश करते है, और सत्य और असत्य दोनो का ही प्रतिपादन कर देते है! अरे, सत्य तो जगत् मे एक ही है, अनेक नही।

१२. जो मुनि है, वह केवल सत्य को ही पकडकर और दूसरी तमाम वस्तुओ को छोडकर ससार-समुद्र के तीर पर आ जाता है। उसी सत्यनिष्ठ मुनि को हम शात कहते हैं।

१—२. ध. प (निरय वग्गो) ३—४ बु. च. (राहुलोवाद सुत्त) ५. ध. प. (चित्त वग्गो) ६. सु. नि. (धम्मिक सुत्त) ७. बु, ली सं (पृष्ठ २५५) ८ म नि (सालेय्यक सुत्त) ९ सु नि (सुभासित सुत्त) १०-११ सु नि (चूलवियूह सुत्त) १२ सु नि (अत्तदड सुत्त)

अहिंसा

१. 'जैसा मैं हूँ वैसे ही वे हैं और जैसे वे हैं वैसा ही मैं हूँ' इस प्रकार अपने उदाहरण से (सर्वात्मैक्य) समझकर न किसी को मारे, न मारने को प्रेरित करे।

*

२. जहा मन हिंसा से मुडता है, वहा दु ख अवश्य ही शान्त हो जाता है।

*

३. अपनी प्राण-रक्षा के लिए भी जान-बूझकर किसी प्राणी का वध न करे।

*

४. मनुष्य यह विचार किया करता है कि मुझे जीने की इच्छा है, मरने की नही, सुख की इच्छा है, दु ख की नही। यदि मैं मेरी ही तरह सुख की इच्छा करनेवाले प्राणी को मार डालू तो क्या यह बात उसे अच्छी लगेगी ? इसलिए मनुष्य को प्राणिघात से तो विरत ही हो जाना चाहिए, और उसे दूसरो को भी हिंसा से विरत कराने का प्रयत्न करना चाहिए।

*

५. वैरियो के प्रति वैररहित होकर, अहा ! हम कैसा आनन्दमय जीवन बिता रहे है, वैरी मनुष्यो के बीच अवैरी होकर विहार कर रहे है !

*

६. पहले तीन ही रोग थे—इच्छा, क्षुधा और बुढापा। पशु की हिंसा से बढते-बढते वे अट्ठानवे हो गये !

ये याजक, ये पुरोहित निर्दोष पशुओ का वध कराते है, धर्म का ध्वस करते है। यज्ञ के नाम पर की गई यह पशु-हिंसा निश्चय ही निन्दित और नीच कर्म है। प्राचीन पडितोने ऐसे याजको की निन्दा ही की है।

*

७. पहले के ब्राह्मण यज्ञ मे गाय का हनन नही करते थे। जैसे माता, पिता, भ्राता और दूसरे बन्धु-बान्धव है, वैसे ही ये गाये हमारी परम मित्र है। ये अन्न, वल, वर्ण और सुख देनेवाली है।

८. किन्तु मानुष भोगो को देखकर कालान्तर मे ये ब्राह्मण भी लोभग्रस्त हो गये, उनकी भी नीयत वदल गई। मन्त्रो को रच-रचकर वे इक्ष्वाकु (ओक्काक) राजा के पास पहुँचे, और उसके धनैश्वर्य की प्रशसा करके उसे पशु-यज्ञ करने के लिए प्रेरित किया। उन्होने उससे कहा, 'जैसे पानी, पृथिवी, धन और धान्य प्राणियो के उपभोग की वस्तुएँ है, उसी प्रकार ये गाये भी मनुष्यो के लिए उपभोग्य है। अत' तू यज्ञ कर।

९ तब उन ब्राह्मणो से प्रेरित होकर रथर्षभ राजाने लाखो निरपराध गायो का यज्ञ मे हनन किया। जो बेचारी न पैर से मारती है, न सीग से, जो भेड की नाई सीधी और प्यारी है, और जो घडाभर दूध देती है, उनके सीग पकडकर राजाने शस्त्र से उनका वध किया।

१०. यह देखकर देव, पितर, इन्द्र, असुर और राक्षस चिल्ला उठे, 'अधर्म हुआ, अधर्म हुआ, जो गाय के ऊपर शस्त्र गिरा!'

---

१ सु नि (नालक सुत्त) २ ध प (ब्राह्मण वग्गो) ३ बु च (सोह सुत्त) ४ बु लो स (पृष्ठ २५५) ५ ध प (सुख वग्गो) ६—१० बु च (ब्राह्मण धम्मिक सुत्त)

अमृत की खेती

१ मैं भी कृषक हूँ। मेरे पास श्रद्धा का बीज है। उस पर तपश्चर्या की वृष्टि होती है।

प्रज्ञा मेरा हल है। ह्री (पाप करने मे लज्जा) की हरिस, मन की जोत और स्मृति की फाल से मैं अपना खेत (जीवन-क्षेत्र) जोतता हूँ।

सत्य ही मेरा खुरपा है। मेरा उत्साह ही मेरा बैल है और यह योगक्षेम मेरा अधिवाहन है। इस हल को मैं नित्य निरतर निर्वाण की दिशा मे चलाया करता हूँ।

२. मैं यही कृषि करता हूँ। इस कृषि से कृषक को अमृत-फल मिलता है, और वह समस्त दु खो से मुक्त हो जाता है।

१—२. सु. नि. (कसिभारद्वाज सुत्त)

मैत्री-भावना

१. शातपद के जिज्ञासु एव आत्महित कुशल मनुष्य का कर्तव्य यह है कि उसे सहनशील, सरलातिसरल, मधुरभाषी, मृदु और निरहकारी बनना चाहिए।

२. हमे कोई ऐसा क्षुद्र आचरण नही करना चाहिए, जिससे कि सुज्ञ जन हमें दोष दें। हमें सदा यही भावना करनी चाहिए कि जगत् के समस्त प्राणी सुखी, सक्षेम और सानद रहे।

३. चर हो या स्थावर, बडे हो या छोटे, दृष्ट हो या अदृष्ट, हम से दूर रहते हो या पास, जगत् में जितने भी प्राणी हो वे सब आनदित रहे।

४. न हम एक दूसरे को धोखा दें, न किसी जगह एक दूसरे का अपमान करे, और न खीझ या द्वेषबुद्धि से एक दूसरे को दु ख देने की मन में इच्छा रखे।

५. माता जिस प्रकार अपने स्नेह-सर्वस्व पुत्र को अपना जीवन खर्च करके भी पालती है, उसी प्रकार समस्त प्राणियो के प्रति हमें असीम प्रेम रखना चाहिए।

६. सर्व प्राणियो के प्रति हमें ऊपर, नीचे और चारो ओर असबाध, अवैर और असपत्न मैत्री की असीम भावना बढानी चाहिए।

७. खडे हो तब, चलते हो तब, बैठे हो तब या बिस्तरे पर पडे हो तब, जबतक नीद न आजाय, तबतक हमे इस मैत्री भावना की स्मृति स्थिर रखनी चाहिए ।

इसी अवस्था को इस लोक मे 'ब्राह्म जीवन' कहते है ।

*

८. जिस मनुष्य के मन से लोभ, द्वेष और मोह ये तीन मनोवृत्तिया नष्ट हो गई है, वही चारो दिशाओ मे प्राणिमात्र के प्रति मैत्री भाव प्रसारित कर सकता है । अपने मैत्रीमय चित्त से चारो दिशाओ मे बसनेवाले समस्त प्राणियो पर वह प्रेम की रस-वर्षा करता है । करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावनाओ का उसे अनायास ही सुलाभ हो जाता है ।

१—७ सु नि (मेत्त सुत्त) ८ अ नि (कालाम सुत्त)

अक्रोध

१. 'मुझे अमुक मनुष्यने गाली दी, अमुकने मुझे मारा, अमुकने मुझे पराजित किया, अमुकने मुझे लूट लिया' इस प्रकार के विचार की जो लोग मन मे गाठ बाध लेते हैं, और वैर भँजाने की इच्छा रखते हैं, उनका वैरभाव कभी शात नही होता।

२. वैर तो उन्हीका शात होता है, जो इस प्रकार के विचार हृदय से निकाल देते हैं कि 'मुझे अमुकने गाली दी, अमुकने मुझे मारा, अमुकने मेरा पराभव किया, अमुकने मुझे लूट लिया।'

३. वैर से वैर कभी शात नही होता। वैर प्रेम से ही शात होता है। यही सनातनधर्म है।

*

४. 'दूसरे भले ही न समझे, पर हम तो इस कलह से दूर ही रहेगे,' ऐसा जो समझते हैं उनका द्वेष या कलह नष्ट हो जाता है।

५. लोगो की हड्डिया तोड डालनेवाले, दूसरो का प्राण ले लेनेवाले, गाय, घोडा, धन-सपत्ति आदि का हरण करनेवाले और राष्ट्र में विप्लव मचानेवाले लोग भी अपना सघ बना लेते हैं, उनमें भी एका हो जाता है, तब तुम्हारा सघ क्यो नही बन सकता?

*

६. किसी से कटु वचन न बोलो। यदि बोलोगे, तो वह भी तुम से वैसा ही कटु वचन बोलेगा। झगडे से दुःख बढता ही है। कटु वचन बोलने से, बदले मे, तुम्हे दण्ड मिलेगा। टूटा हुआ कासा जैसे निःशब्द रहता है, उसी तरह अगर तुम स्वय चुप रहोगे, तो तुम निर्वाणपद प्राप्त कर लोगे, तुम्हे कलह नही सतायगा।

*

७. क्षमा के समान इस जगत् मे दूसरा तप नही।

*

८. जो चढे हुए क्रोध को चलते हुए रथ की तरह रोक लेता है, उसीको मै सच्चा सारथी कहूँगा; और लोग तो केवल लगाम पकडनेवाले है।

९ अक्रोध से क्रोध को जीते, भलाई से बुराई को जीते, कृपण को दान से जीते, और झूठ बोलनेवाले को सत्य से जीते।

*

१०. क्रोध करनेवाले के ऊपर जो क्रोध करता है, उसका खुद उससे अहित होता है, पर जो क्रोध का जवाब क्रोध से नही देता, वह एक भारी युद्ध जीत लेता है। प्रतिपक्षी को क्रोधान्ध देखकर जो अत्यत विवेक के साथ शात हो जाता है, वह अपना और पराया दोनो का ही हित-साधन करता है।

*

११. तुझे कोई गाली दे, और गाली ही नही, तेरे गाल पर कोई थप्पड मार दे, या पत्थर या हथयार से तेरे शरीर पर कोई प्रहार करे, तो भी तेरे चित्त मे विकार नही आना चाहिए, तेरे

मुहँ से गदे शब्द नही निकलने चाहिए, तेरे मन मे उस समय भी तेरे शत्रु के प्रति अनुकपा और मैत्री का भाव रहना चाहिए, और किसी भी हालत मे क्रोध नही आना चाहिए।

१२. मनुष्य तभीतक शात और नम्र दीखता है, जवतक कोई उसके विरुद्ध अपशब्द नही कहता। पर जब उसे अपशब्द या निंदा सुनने का प्रसग आता है, तभी इस बात की परीक्षा हो सकती है, कि वह वास्तव मे शात और नम्र है या नही।

१३. जो धर्म के गौरव से धर्म को पूज्य मानकर शात और नम्र होता है उसी को सच्चा शात और उसीको सच्चा नम्र समझना चाहिए। अपना मतलव साधने के लिए कौन शात और नम्र नही वन जाता?

१४. कोई मौके से बोलता है तो कोई बेमौके से बोल देता है, कोई उचित बात कहता है तो कोई अनुचित बात कह देता है, कोई मधुर वचन बोलता है तो कोई कटु वचन बोलता है, कोई हित की बात कहता है तो कोई अहित की बात कहता है, कोई हितबुद्धि से बोलता है तो कोई द्वेषबुद्धि से बोलता है। इन सब प्रसगो पर तुम्हारा चित्त विकार के वश नही होना चाहिए, तुम्हारे मुहँ से गदे शब्द नही निकलने चाहिए, तुम्हारे अत करण मे दया और मैत्री रहनी चाहिए, क्रूरता और द्वेष नही, और तुम्हे ऐसा अभ्यास करना चाहिए कि जिस मनुष्यने तुम्हारे विरुद्ध कोई बात कही है, उसे ही आधार बनाकर तुम समस्त ससार पर मैत्री भावना की सतत वर्षा कर सको।

१५ यदि कोई टोकरी और कुदाली लेकर यह कहे कि 'इस तमाम पृथिवी को मै खोदकर फेक दूगा!' दूसरा मनुष्य लाख

का रग, हल्दी का रग और मजीठ का रग लेकर कहे कि 'इस समस्त आकाश को मैं रँग डालूगा !' और तीसरा मनुष्य घास की पूली सुलगाकर कहे कि 'इस गगा नदी को मैं भस्म कर डालूगा !' तो उन मनुष्यो के प्रयत्नो का पृथिवी, आकाश या गगा नदी पर कोई असर पडने का नही । इसी प्रकार दूसरे लोगो के बोलने का तुम्हारे हृदय पर जरा भी बुरा असर नही पडना चाहिए ।

१६. अगर चोर और लुटेरे आकर तुम्हारे शरीर के अग आरे से काटने लग जायँ, और उस अवसर पर तुम्हारे मन में उन लुटेरो के प्रति क्रोध या द्वेष आ जाय, तो तुम मेरे सच्चे अनुयायी नही कहे जा सकते ।

ऐसे प्रसग पर भी तुम्हारे मन मे द्वेष नही आना चाहिए, तुम्हारे मुहँ से बुरे शब्द नही निकलने चाहिए, तुम्हारे अत करण मे दया और मैत्री की भावना रहनी चाहिए, और अपने शत्रु को आधारस्वरूप मानकर समस्त ससार पर तुम्हे निस्सीम मैत्री भावना की रसवर्षा करनी चाहिए ।

१—३ ध प (यमक वग्गो) ४—५ म नि (उपक्किलेस सुत्तन्त) ६ ध प (दण्ड वग्गो) ७ ध प (बुद्ध वग्गो) ८—९ ध प (कोध वग्गो) १० बु ली सा स (पृष्ठ ३०९) ११—१६ म नि (ककचूपम सुत्तन्त)

तृष्णा

१. प्रमाद-रत मनुष्य की तृष्णा लता की भाति बढती ही जाती है। वह एक वस्तु से दूसरी वस्तुतक इस तरह दौडता रहता है, जैसे वन मे वदर एक फल के वाद दूसरे फल की इच्छा करता है।

२. यह जहरीली तृष्णा जिसे जकड लेती है, उसके शोक वीरन घास की तरह बढते ही जाते है।

३ इस दुर्जेय तृष्णा को जगत् में जो काबू मे कर लेता है, उसके शोक इस प्रकार झड जाते है, जिस प्रकार कमल के पत्ते पर से जल के विंदु।

४. जैसे जड के दृढ होने के कारण और उसके नष्ट न होने से वृक्ष कटा हुआ भी फिर से उग आता है, वैसे ही जबतक तृष्णा की जड न कटे, तृष्णारूपी अनुशय (मल) नष्ट न हो, तवतक दु ख बारबार पैदा होता ही रहेगा।

५. ये रागयुक्त सकल्प सोतो के रूप मे चारो ओर बह रहे है, जिनके कारण तृष्णारूपी लता अकुरित होती और जड पकडती रहती है। जहा भी कही तुम यह लता जड़ पकडती हुई देखो, वही प्रज्ञा की कुल्हाडी से उसकी जड काट डालो।

६. जाल मे फँसे हुए खरगोश की तरह तृष्णा के पीछे पडे हुए ये प्राणी इधर-उधर चक्कर काटते रहते है। सयोजनो अर्थात्

मन के बधनो मे जकडे हुए ये मूढ लोग बारबार दु ख और क्लेश पाते है ।

७. ये जो लोहे, लकडी या रस्सी के बधन है, इन्हे बुद्धिमान् लोग दृढ बधन नही कहते । इनकी अपेक्षा अधिक दृढ बंधन तो वह चिता है, जो मणि, कुडल, पुत्र और कलत्र के लिए की जाती है ।

८. जो मनुष्य राग मे रत रहते है वे अपनी ही बनाई धारा में इस प्रकार वह जाते है, जैसे मकडी अपने ही रचित जाल मे फँस जाती है । धीर पुरुष इस धारा को काटकर समस्त आकाक्षाओ और दु खो से रहित हो जाते है ।

९. जो प्राणी तर्क-वितर्क आदि सशयो से पीडित है, और तीव्रराग मे फँसा हुआ है तथा सदा सुख-ही-सुख की अभिलाषा करता है, उसकी तृष्णा बढती ही जाती है, और वह प्रतिक्षण अपने लिए और भी मजबूत बधन तैयार करता जाता है ।

१०. जिसकी तृष्णा नष्ट हो गई, राग से जो विमुक्त हो गया, जो शब्द और उसका अर्थ जानता है और जिसे अक्षरो के क्रम का ज्ञान है, उसे 'महाप्राज्ञ' कहते है । निश्चय ही वह अतिम शरीरवाला है, अर्थात् वह निर्वाण-प्राप्त कर लेगा ।

११. ससार-समुद्र के पार जाने का प्रयत्न न करनेवाले मूर्ख मनुष्य को ये ऐहिक भोग नष्ट कर देते है । भोग की तृष्णा मे फँसकर वह दुर्बुद्धि मनुष्य अपने आपका ही हनन करता है ।

*

१२. तृष्णा का साथी बनकर बारबार जन्म लेनेवाला मनुष्य मनुष्यत्व अथवा मनुष्येतर भाव को प्राप्त करके ससार-समुद्र को पार नही कर सकता ।

१३. 'तृष्णा से दुःख की उत्पत्ति होती है'—तृष्णा मे यह दोष देखकर भिक्षु को चाहिए कि वह वीततृष्ण, आदानविरहित (अपरिग्रही) और स्मृतिमान् होकर प्रवृज्या लेले।

१४. भवतृष्णा का उच्छेद कर देनेवाले शातचित्त भिक्षु की जन्मपरपरा नष्ट हो जाती है, उसका पुनर्जन्म नही होता।

*

१५. मनुष्य जितना ही कामादि का सेवन करता है, उतनी ही उसकी तृष्णा बढती जाती है। काम के सेवन मे क्षणमात्र के लिए ही रसास्वाद मालूम देता है।

१—११ ध प (तगहा वग्गो) १२—१४ सु नि (द्वयतानुपस्सना सुत्त) १५ म नि (मागदिय सुत्तन्त)

अंतःशुद्धि

१. हे ब्राह्मण ! इन लकडियो को जलाकर तू क्यो शुद्धि मानता है ? यह शुद्धि नही है । यह तो एक बाह्य वस्तु है । पडित लोग इसे शुद्धि नही कहते ।

मैं यह 'दारु-दाह' छोडकर अपने अदर ही जोति जलाता हू । नित्य अग्निवाला, नित्य एकान्तचित्तवाला होकर मैं ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करता हू । यही सच्ची शुद्धि है ।

२. हे ब्राह्मण ! तेरा यह अभिमान खरिया का भार है, क्रोध धुआ है, मिथ्या भाषण भस्म है, जिह्वा स्रुवा है और हृदय जोति का स्थान है । आत्मा का दमन करने पर ही पुरुष को यह 'अन्त-र्ज्योति' प्राप्त होती है । यही सच्ची आत्म-शुद्धि है ।

३. हे ब्राह्मण ! शीलरूपी घाटवाले निर्मल धर्मसरोवर में, जिसकी सतजन प्रशसा करते है, नहाकर कुशल जन शुद्ध होते है । वे शरीर को बिना भिगोये ही पार उतर जाते है ।

४. श्रेष्ठ शुद्धि की प्राप्ति सत्य, धर्म, सयम और ब्रह्मचर्य पर निर्भर करती है ।

*

५. अरे मूर्ख ! यह जटा-जूट के रखा लेने से तेरा क्या बनेगा, और मृगचर्म पहनने से क्या ? अतर तो तेरा रागादि मलो से परिपूर्ण है, बाहर तू क्या धोता है ?

*

६. बाहुका, अधिकक्क, गया और सुंदरिका में, सरस्वती और प्रयाग तथा बाहुमती नदी मे कलुषित कर्मोवाला मूढ चाहे नित्य ही नहावे, पर शुद्ध नही होगा । क्या करेगी सुदरिका, क्या करेगा प्रयाग और क्या करेगी यह बाहुलिका ? ये सब तीर्थ उस कृतकिल्विष (पापी) दुष्ट मनुष्य को शुद्ध नही कर सकते ।

७. शुद्ध मनुष्य के लिए सदा ही फल्गू नदी है, सदा ही उपोसथ (व्रत का दिन) है । शुद्ध और शुचिकर्मा के व्रत तो सदा ही पूरे होते रहते है ।

८. तू तो समस्त प्राणियो की कल्याण-कामना कर, यही तेरा तीर्थस्थान है । यदि तू असत्य नही बोलता, यदि तू प्राणियो की हिंसा नही करता, यदि तू बिना दिया हुआ नही लेता, और यदि तू श्रद्धावान् तथा मत्सर-रहित है, तो फिर गया जाकर क्या करेगा ? तेरे लिए तो यह क्षुद्र जलाशय ही गया है ।

*

९ पानी से शुद्धि नही होती । जो सत्यनिष्ठ और धर्मवान् है वही शुचि है,, वही शुद्ध है ।

*

१०. अत शुद्धि न दृष्टि से, न श्रुति से और न ज्ञान से ही प्राप्त होती है । शीलव्रत पुरुष भी आध्यात्मिक शुद्धि नही दिला सकता, पर इतने से यह न समझना कि ये निरर्थक है और इनका त्याग करने से शुद्धि प्राप्त होती है । जबतक सम, विशेष और हीन का भाव बना रहेगा, तबतक शुद्धि दुर्लभ है ।

*

११ जो तृष्णा के बधन से नही छूटा उस मनुष्य की शुद्धि

न नग्न रहने से, न जटा रखाने से, न पक लपेटने से, न भस्म रमाने से और न विभिन्न आसनो के लगाने से ही होती है।

*

१२. तू अपने किये पापो से अपने को ही मलिन बना रहा है। पाप छोडदे तो स्वय ही शुद्ध हो जायगा। शुद्धि और अशुद्धि अपनी ही है। अन्य मनुष्य अन्य मनुष्य को शुद्ध नही कर सकता।

*

१३. जिन वस्तुओ की उत्पत्ति हुई है वे सभी अनित्य है, जो इस बात को प्रज्ञा की आखो से देखता है, वह सभी दु खो से उदासीन हो जाता है। चित्त-शुद्धि का यही सच्चा मार्ग है।

१४. जितनी भी सस्कृत या उत्पन्न वस्तुएँ है वे सभी दु ख-दायी ह। जो इस बात को जानता है और प्रज्ञा की आखो से देखता है, वह सभी दु खो से विरत हो जाता है। चित्त-शुद्धि का यही सच्चा मार्ग है।

१५. जितने भी धर्म या पदार्थ है वे सभी अनित्य है। जो इस बात को जानता है और प्रज्ञा की आखो से देखता है, वह समस्त दु खो से विरत हो जाता है। चित्त-शुद्धि का यही सच्चा मार्ग है।

१-४ दु च (अत्तदीपसुत्त) ५ ध प (ब्राह्मण वग्गो) ६-८ म. नि (वत्थ सुत्तन्त) ९ दु च (जटिल सुत्त) ११ ध प (दण्ड वग्गो) १२ ध प (अत्त वग्गो) १३-१५ ध प (मग्ग वग्गो)

चित्त

१. जिस समय मनुष्य का चित्त कामविकार से व्यग्र होता है और कामविकार के उपशमन का रास्ता उसे दिखाई नही देता, उस समय उस कामान्ध को यह नहीं सूझता, कि क्या तो स्वार्थ है और क्या परार्थ।

२. जिस समय उसका चित्त क्रोधाभिभूत अथवा आलस्य के कारण जडवत्, भ्रात अथवा सशयग्रस्त हो जाता है, उस समय वह यथार्थरीति से यह नही समझता कि अपना अथवा दूसरे का हित किसमे है ।

३. बर्तन के पानी मे काला रग डाल देने के बाद जैसे उसमे हमे अपना प्रतिविम्ब ठीकठीक नही दिखाई देता, उसी तरह जिसका चित्त कामविकार से व्यग्र हो जाता है, उसे अपने हित-अहित का ज्ञान नही रहता।

४. स्वच्छ पानी का बर्तन जब गरम हो जाता है, तब उस पानी से भाप निकलने लगती है और वह खोलने लगता है। उस समय मनुष्य उस खोलते हुए पानी में अपना प्रतिविम्ब नही देख सकता। इसी तरह मनुष्य जब क्रोधाभिभूत होता है, तब उसकी समझ मे यह नही आता कि उसका आत्महित किस में है।

५ उस बर्तन के पानी मे अगर सिवार हो, तो मनुष्य उसमे अपना प्रतिविम्ब नही देख सकता।

इसी प्रकार जिसका चित्त आलस्य से पूर्ण होता है, वह अपना ही हित नही समझ सकता, दूसरो का हित कैसे समझ सकेगा ?

६ उस बर्तन का पानी अगर हवा से हिलने-डुलने लगे, तो उसमे मनुष्य अपना प्रतिबिम्ब कैसे देख सकता है ?

इसी प्रकार भ्रातचित्त मनुष्य यह समझ ही नही सकता कि किसमें तो अपना हित है और किसमे पराया।

७. वह पानी अगर हाथ से हिला दिया गया हो, तो मनुष्य उसमे अपना प्रतिबिम्ब ठीकठीक नही देख सकता।

इसी तरह जिसका चित्र सशयग्रस्त होगया है, वह अपना और पराया हित-अहित समझ ही नही सकता।

८. वही पानी यदि निर्मल और शात हो तो मनुष्य उसमें अपना प्रतिबिम्ब स्पष्ट देख सकता है।

इसी प्रकार जिसका चित्त कामच्छद, व्यापाद (क्रोध), आलस्य, भ्राातता और सशयग्रस्तता इन पाच आवरणो से मुक्त होगया है, वही अपना और पराया हित यथार्थरीति से समझ सकता है।

९. जिस प्रकार पानी से निकलकर मछली थल मे आ पडने-पर तडफडाती है, उसी तरह यह चित्त राग, द्वेष और मोह के फदे से निकलने के लिए कापता है।

१०. कठिनाई से वश मे आनेयोग्य, चचल और जहा-तहा दौडनेवाले चित्त का दमन करना अच्छा है। दमन किया हुआ चित्त ही शाति-दायक होता है।

११. कठिनाई से समझ मे आनेयोग्य, अत्यत चालाक और जहा-तहा दौडनेवाले चित्त की बुद्धिमान् पुरुष को रक्षा करनी चाहिए, सुरक्षित चित्त से सदैव सुख मिलता है।

१२. दूर-दूरतक दौड लगानेवाले, एकाकी चलनेवाले शरीर-रहित और हृदय की गुफा में छिपे हुए इस चित्त को जो सयम मे रखता है वही प्रबल मार (विषयो) के बधन से मुक्त हो सकता है।

१३. जिसका चित्त स्थिर नही, जो सच्चे धर्म को नही जानता और जिसके हृदय मे शाति नही, उसे पूर्ण ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है ?

१४. जिसका चित्त मल-रहित और अकप्य है, जो सदा ही पाप और पुण्य से विहीन है; उस सतत सजग रहनेवाले पुरुष के लिए कही भी भय नही।

१५. इस शरीर को घडे के समान टूटजानेवाला समझकर इस चित्त को गढ के समान सुदृढ करके प्रज्ञा के अस्त्र से विषयो के साथ युद्ध करे, और जब विषयो को जीत ले तो उनके ऊपर कडी नजर रखे, असावधानी न करे।

१६ जितना हित माता-पिता या दूसरे भाई-बधु कर सकते है, उससे कही अधिक हित मनुष्य का सयत चित्त करता है।

१७ अगर मकान का छप्पर खराब है, तो उसकी दीवारे वगैरा अरक्षित ही समझनी चाहिए, धीरे-धीरे वह मकान भूमिसात् ही होने को है।

इसी तरह जो अपने चित्त को नही सँभालता, उस मनुष्य के कर्म विकारग्रस्त हो जाते है, और इसका अत्यत अनिष्ट परिणाम

होता है। अपने चित्त को यदि वह सँभाल लेता है तो उसके सारे कर्म सुरक्षित रहते है, और वह शाति से प्राण-त्याग करता है।

१८. जिस जमय चित्त में जडता आ गई हो, उस समय प्रश्रब्धि (शाति), समाधि और उपेक्षा इन तीन बोध्यगो की भावना करनी ठीक नही। किसी मनुष्य को आग सुलगानी हो, और वह चूल्हे मे गीली लकडिया और गीला घासपात रखकर उसे फूकने लगे तो क्या आग सुलग जायगी ?

इसी प्रकार जिसका चित्त जड हो गया है, वह यदि प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा इन तीन बोध्यगो की भावना करेगा, तो उसके चित्त को उत्तेजना मिलने की नही।

१९. उस समय तो धर्म-प्रविचय (धर्मान्वेषण), वीर्य (उद्योग या मनोबल) और प्रीति (हर्ष) इन तीन बोध्यगों की ही भावनाएँ अत्यत उपयोगी है। सूखी लकडी और सूखा घास डालने से आग तुरत सुलग जाती है।

इसी तरह चित्त की जाड्यावस्था मे धर्मप्रविचय, वीर्य और प्रीति इन तीन सबोध्यगो की भावना करने से चित्त की जड़ता दूर हो जाती है और उसे अवश्य उत्तेजना मिलती है।

२०. पर, जिस समय चित्त भ्रात हो गया हो, उस समय धर्मप्रविचय, वीर्य और प्रीति इन तीन बोध्यगो की भावना करनी ठीक नही। इन बोध्यगो की भावना से चित्तभ्राति का उपशमन नही होता, बल्कि वह और भी अधिक भ्रात हो जाता है।

२१. उस समय तो प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा इन तीन बोध्यगो की भावना करनी चाहिए, क्योकि इन बोध्यगो से भडका

हुआ चित्त ठिकाने पर आ जाता है, इन्ही बोध्यगो की भावना से भ्रातचित्त को शाति मिलती है ।

*

२२. केवल यह चित्त ही मरणशील मनुष्य का साथी है ।

*

२३ जिस प्रकार उस मकान मे वर्षा का पानी सहज ही पैठ जाता है, जो ठीक तरह से छाया हुआ नही होता, उसी प्रकार असयत (अभावित) चित्त मे राग सहज ही प्रवेश कर जाता है ।

*

२४ जैसे अच्छी तरह छाये हुए मकान मे वर्षा का पानी आसानी से नही पहुँच सकता, वैसे ही सुसयत चित्त के अन्दर राग का प्रवेश नही हो सकता ।

---

१ ८—बुद्धलीला-सार-सग्रह (भाग ३, पृष्ठ २७०) ९–१६ ध प. (चित्तवग्गो) १७. अ. नि. (कूटसुत्त) १८–२१. बु. ली. स. (पृष्ठ २७१) २२. अं. नि. (दसक निपात) २३–२४. ध. प. (यमक वग्गो)

अनित्यता

१ अरे ! यह तेरा गर्वीला रूप एक दिन जीर्ण-शीर्ण हो जायगा। यह क्षणभगुर शरीर रोगो का घर है। इस देह को सड़-सडकर भग्न हो जाना है। आश्चर्य ही क्या—जीवन मरणान्त जो ठहरा।

२. इस जराजीर्ण शरीर के साथ कौन मूर्ख प्रीति जोड़ेगा ? इसकी हड्डियो को तो जरा देखो—शरदकाल की अपथ्य परित्यक्त लौकी की भाति, या कबूतरो की सी सफेद ये हड्डिया !

३. यह शरीर क्या है, हाडो का एक गढ है। यह गढ मास और रक्त से लिपा हुआ है। इस गढ के भीतर बुढापा, मृत्यु, अभिमान और डाहने अड्डा बना रखा है।

४. इस चौथे पन मे तू पीले पत्ते की तरह जीर्ण हो गया है। देख, ये यमदूत तेरे सामने खडे है। प्रयाण के लिए तो तू तैयार है, पर पाथेय (राह-खर्च) तेरे पास कुछ भी नही ! अत. अब भी तू अपने लिए रक्षा का स्थान बना, उद्योग कर, पडित बन, अपना यह मल धो डाल, दोषरहित हो जा। इस प्रकार तू आर्यो का दुर्लभ दिव्यपद प्राप्त कर लेगा।

५ आयु तेरी अब समाप्त हो चली है। तेरा कोई निवास-स्थान भी यहा नही, न पाथेय ही है। अत तू अपने लिए रक्षा का स्थान बना, उद्योग कर, पडित बन, और अपना यह मल

पखारकर दोषरहित हो जा। इस तरह तू अब भी आर्यों का दुर्लभ दिव्यपद प्राप्त कर लेगा।

*

६. इस देह के भीतर कैसी-कैसी घिनौनी चीजें भरी हुई हैं—आतें, यकृत्-पिंड, मूत्राशय, फेफडे, तिल्ली, लार, थूक, पसीना, चरवी, रक्त, पीव, पित्त, विष्ठा और मूत्र !

७. इस नौ दरवाजे की देह से कैसी-कैसी गदी चीजें निकला करती है—आख, कान, नाक, मुहँ ये सभी मलद्वार है। शरीर के एक-एक छेद से पसीना निकलता है।

८. जब इस देह में से प्राण निकल जाते है, तो यह फूल जाती है और नीली पड जाती है। मरघट में उसे फेंक देते हैं और तब सगे सम्बन्धी भी उस देह की उपेक्षा करते है।

९. कुत्ते, सियार, भेडिये और कीडे वहा उस देह को खाते है और कौए और गीध भी महोत्सव मनाते हैं।

१०. ऐसी क्षणभगुर और घृणित देह पर जो गर्व और दूसरो की अवहेलना करता है, उसका कारण सिवा उसकी मूढता के और हो ही क्या सकता है ?

*

११. जागो ! बैठ जाओ ! दृढ निश्चय के साथ शाति का अभ्यास करो। तुम्हे गाफिल देखकर यह मृत्युराज मार कही अपने मोहपाश मे न फँसा ले !

१२. शल्य तुम्हारे शरीर में चुभा हुआ है, और तुम उससे पीडित हो रहे हो। आश्चर्य है कि इस दु ख-पीडा में भी तुम्हे नीद आरही है !

१३. अप्रमाद और प्रज्ञा के जरिये अपने शरीर मे चुभा हुआ यह तीक्ष्ण शल्य निकाल लो ना ?

*

१४. अरे, यह जीवन कितना अल्प है ! सौ वर्ष पूरे होने के पहले ही यह समाप्त हो जाता है। और जो इससे अधिक जीता है वह भी एकदिन जराजीर्ण होकर मर जाता है।

१५. मनुष्य जिसे मानता है कि यह मेरा है उसे भी एक दिन मृत्यु-द्वारा नष्ट होना ही है, यह समझकर बुद्धिमान् धर्मोपासक 'ममत्व' के ऊपर निर्भर न करे।

१६. सपने मे देखी हुई वस्तु को जागने के बाद जैसे मनुष्य देख नही सकता, वैसे ही वह अपने परलोकवासी प्रियजनो को नही देख सकता।

१७. जो प्राणी परलोकवासी हो जाता है उसका यहा केवल नाम ही शेष रह जाता है।

१८. ममत्व मे लुब्ध मनुष्य न तो शोक का त्याग कर सकते है, न दुःख और डाह का ही।

*

१९ ओह ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतनाशून्य हो सूखे ठूठ की तरह पृथिवी पर गिर रहेगा।

*

२०. राग आदि के पुष्पो को चुननेवाले आसक्तियुक्त मनुष्य को मृत्यु उसी तरह पकड ले जाती है, जिस तरह कि सोये हुए गाव को बाढ बहा ले जाती है।

*

२१. सोये हुए गाव को जैसे भारी बाढ बहा ले जाती है, वैसे ही पुत्र कलत्रादि मे आसक्त पुरुष को धोखे-ही-धोखे मे मौत उठा ले जाती है।

२२. न पुत्र रक्षा कर सकता है, न पिता और न बधु-बाधव ही। जब मौत आकर धर दबाती है, तब न जातिवाले रक्षक हो सकते है, न परिवारवाले।

*

२३. अनित्यता न तो नगर-धर्म है, न ग्राम-धर्म, और न वह कुलधर्म ही है। समस्त मनुष्यो और देवताओ का यही स्वभाव है कि एक-न-एक दिन उन्हे मरना ही होगा।

*

२४ मूर्ख सोचता है कि 'यह पुत्र मेरा है', 'यह धन मेरा है!' अरे, जब यह शरीर ही अपना नही है, तब किसका तो पुत्र और किसका धन ?

*

२५. जरा देखो तो इस विचित्र शरीर को। तमाम व्रण ही व्रण है। पीडित है, तो भी अनेक सकल्पो से युक्त है! अरे, इसकी स्थिति ही अनियत है। क्या ठिकाना, कब छूट जाय।

*

१—५. ध. प. (जरा वग्गो). ६—१०. सु. नि (विजयसुत्त) ११—१३. सु. नि. (उट्ठान सुत्त) १४—१८ सु नि. (जरासुत्त) १९. ध. प (चित्त वग्गो) २०. ध. प. (पुप्फ वग्गो) २१—२२ ध. प. (मग्ग वग्गो) २३. थेरी अपदान (तृतीय भाणवार) २४. ध. प. (बाल वग्गो) २५. ध प. (जरा वग्गो)

शोक किसके लिए ?

१. ऐसा कोई उपाय नही कि जिससे मृत्यु न हो। जिसने जन्म लिया है वह मरेगा अवश्य। प्राणियो का स्वभाव ही मृत्यु है।

२. पके हुए फलो को जिस तरह डाल से नीचे गिर पडने का भय है, उसी तरह जन्मे हुए प्राणियो को मृत्यु का हमेशा ही भय लगा रहता है।

३. कुम्हार के गढे हुए मिट्टी के बर्तन का जिस प्रकार फूटने पर पर्यवसान हो जाता है, उसी प्रकार प्राणियो के जीवन का मृत्यु में पर्यवसान होता है।

४. छोटा हो या बडा, मूर्ख हो या पडित, सभी मृत्यु के अधीन है। ये सभी प्राणी मृत्युपरायण हैं।

५. मृत्यु और जरा से यह सारा ससार ग्रसित हो रहा है। यह तो लोक का स्वभाव ही है, ऐसा समझकर आत्मज्ञ पडित शोक नही करते।

६ जिसके आने और जाने का मार्ग तुझे मालूम नही, और जिसके दोनो ही अत तेरे देखने मे नही आते, उसके लिए तू अकारथ ही शोक करता है।

७ कितना ही रोओ, कितना ही शोक करो, इससे चित्त को शाति तो मिलने की नही। उलटा दु ख ही बढेगा, और शरीर पर भी शोक का बुरा प्रभाव पडेगा।

८. आप ही अपने को कष्ट देनेवाला मनुष्य क्षीणकाय और निस्तेज हो जाता है। शोक से उन मृत प्राणियो को कोई लाभ तो पहुँचता नही। अतएव यह शोक व्यर्थ ही है।

९. कोई सौ वर्ष या इससे भी अधिक जीवित रहे, तो क्या—एक-न-एक दिन तो उसे प्रियजनो के बीच से अलग होना ही है।

१०. अत जो अपने को सुखी रखना चाहता है, उसे अपने अत करण से इस शोकरूपी शल्य को खीचकर फेक देना चाहिए।

*

११. यह चीज मेरी है या दूसरो की, ऐसा जिसे नही लगता और जिसे ममत्व की वेदना नही होती, वह कभी यह कहकर शोक नही किया करता कि मेरी वह चीज नष्ट हो गई है।

*

१२. प्रिय वस्तु से ही शोक उत्पन्न होता है, और प्रिय से ही भय। प्रिय वस्तुओ के बधन से जो मुक्त है, उसे शोक नही, फिर भय कहा से हो ?

१३. प्रेम (मोहासक्ति) से ही शोक उत्पन्न होता है, और प्रेम से ही भय, प्रेम से जो मुक्त हो गया है उसे शोक कैसा—और फिर भय कहा से होगा ?

१४ इसी प्रकार राग, काम और तृष्णा से शोक तथा भय उत्पन्न होता है। राग, काम और तृष्णा से जो विमुक्त है, उसका शोक से क्या सबध—और फिर उसे भय कहा से होगा ?

*

१५. मनुष्य तो है ही क्या, ब्रह्मा के भी वश की यह बात नही कि जो जराधर्मी है उसे जरा (बुढापा) न सताये, जो मर्त्य

है उसकी मृत्यु न हो, जो क्षयवान् है उसका क्षय न हो और जो नाशवान् है उसका नाश न हो ।

१६. किसी प्रियजन की मृत्यु हो जाने के प्रसगपर मूढ लोग यह विचार नही करते कि 'यह बात तो है नही कि मेरे ही प्रियजन को बुढापा, व्याधि और मृत्यु का शिकार होना पडा है, यह तो सारे ससार का धर्म है, प्राणिमात्र जरा और मृत्यु के पाश मे बँधे हुए है ।'

१७. मूढ लोग विवेकान्ध होकर शोक-समुद्र मे डूब जाते है, और किंकर्तव्यविमूढ हो जाते है। न उन्हे अन्न रुचता है, न जल। उनके शरीर की काति क्षीण पड जाती है। काम-काज सब बद हो जाता है। उनकी यह दशा देखकर उनके शत्रु आनद मनाते है, कि चलो अच्छा हुआ, इनका प्रियजन तो मरा ही, यह भी उसके वियोग में मरनेवाले है।

१८. पर बुद्धिमान् और विवेकी मनुष्य की बात इससे जुदी है। वह जरा, व्याधि, मरण, क्षय और नाश का शिकार होने पर यथार्थरीति से विचार करता है। यह देखकर कि इस विकार से तो जगत् मे कोई भी अछूता नही बचा, वह शोक नही करता। वह अपने अत करण से शोक के उस विषाक्त बाण को खीचकर फेक देता है, जिस बाण से विद्ध मूर्ख मनुष्य अपनी ही हानि करते है।

१–१० सु नि (सल्ल सुत्त) ११ सु नि (अत्तदड सुत्त) १२-१४ ध प (पिय वग्गो) १५–१८ अ नि (कोसल सुत्त)

विषयों का मीठा विष

१. नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा और त्वचा इन पाच इन्द्रियो के रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श से मनुष्य को जो सुख प्राप्त होता है, उसी को मै विपयो की जहरीली मिठाई कहता हू ।

२. एक नौजवान आदमी व्यापार, खेती-पाती या नौकरी करके अपना निर्वाह करता है । अपने रोजगार-धन्धे मे उसे भारी-से-भारी कष्ट झेलना पडता है, तो भी विषय-भोग की वस्तु प्राप्त करने के लिए वह दिन-रात प्रयत्न किया करता है । इतना परिश्रम करने पर भी, यदि उसकी मनचाही चीज उसे नही मिलती तो वह शोकाकुल होकर विचार-विमूढ बन जाता है ।

३. यदि उसे अपने उद्योग मे यश मिल गया और अपनी वाछित वस्तु प्राप्त हो गई, तो वह दिन-रात इसी चिन्ता मे पडा रहता है, कि कोई दुष्ट राजा या चोर उसे लूट न ले जायें, आग या वाढ से वह नष्ट न हो जाय और उससे दुश्मनी माननेवाले बन्धु-बान्धव कही उसे नुकसान न पहुँचा बैठे ।

इन विचारो से उसका मन सदा ही शकित और त्रस्त रहता है। और अगर उसकी आशका सत्य निकली, तो उस मनुष्य के दु ख का पार नही रहता ।

४. इन विषयो के लिए ही एक राजा दूसरे राजा के साथ, क्षत्रिय क्षत्रिय के साथ, ब्राह्मण ब्राह्मण के साथ, वैश्य वैश्य के साथ,

माता पुत्र के साथ, पुत्र माता के साथ, बाप लडके के साथ, बहिन भाई के साथ, भाई बहिन के साथ और मित्र मित्र के साथ लडता है। इन विषयो के पीछे क्या-क्या काण्ड नही होते—गाली-गलौज होता है, हाथापाई होती है, हथयार चल जाते है और लोग मारे भी जाते है, और नही तो मरणातक दु ख तो भोगना ही पडता है।

५. इन विषयो की प्राप्ति के लिए ही लोग लडने पर आमादा हो जाते है, और भीषण युद्धक्षेत्र मे उतर पडते है। खूब घमासान युद्ध होता है, और रणक्षेत्र मे कितने ही मनुष्य अस्त्र-शस्त्रो से मारे जाते है, कितने ही आहत होते है। विषयो की इस जहरीली मिठाई के पीछे उन्हे मरणान्तक दु ख भोगना पडता है।

६ इस विषय-भोग के लिए कितने ही मनुष्य चोरी करते है, डाका डालते है, राहगीरो पर टूट पडते है या दूसरो की स्त्रियो के साथ व्यभिचार करते है। विषय-भोग के शिकार उन चोरो, डाकुओ और व्यभिचारियो को पकडकर राजा अनेक प्रकार का दण्ड देता है। उनके हाथ-पैर तोड डालते है, उनके नाक-कान काट लेते है या उनका सिर ही उडा देते है।

७. इस विषाक्त विषय-भोग के लिए ही मनुष्य मन, वचन और काया से इस लोक मे घोर-से-घोर दुराचरण करता है, और मृत्यु के बाद दुर्गति को प्राप्त होता है।

८ विषयो की आसक्ति छोड देने से ही मनुष्य विषय-विमुक्त हो सकता है।

९. जो ज्ञानवान् मनुष्य विषय-माधुर्य, विषय-दोष और विषय-मुक्ति को यथार्थरीति से जानता है, वह स्वय विषयो का

त्याग कर देता है, और दूसरो को भी विषयो के त्याग का उपदेश करता है।

१०. सौन्दर्य की मिठाई क्या है ? किसी अत्यन्त सुरूपवती तरुणी को देखकर मन मे जो मादक सुख उत्पन्न होता है, वही सौन्दर्य की मिठाई है।

११. पर इस सौन्दर्य की मिठाई मे तो विकार है। वही सुन्दरी तरुणी जब वृद्धा हो जाती है, जब उसकी कमर झुक जाती है, बिना हाथ मे लकडी लिये जब वह चल नही सकती, उसके सब अग शिथिल पड जाते है, दात गिर जाते है, बाल सन-से सफेद हो जाते है, गर्दन हिलने लगती है, चेहरे पर झुरिया पड जाती है, तब उसका वह पहले का सरस सौन्दर्य और ललित लावण्य विनष्ट हो जाता है। यह है सौन्दर्य का दोष।

१२. उस सुन्दरी तरुणी के शव को तुम श्मशान मे पडा हुआ देखो, तो क्या तब भी तुम उस सौन्दर्य को विकारमुक्त मानोगे ? कौओ और कुत्तो का खाया हुआ वह शव ! कहा गया वह सरस सौन्दर्य, कहा गया वह ललित लावण्य, और कहा गया वह तरल तारुण्य ?

१३ सौन्दर्य के विषय मे आसक्ति न रखना ही सौन्दर्य-जन्य भय से मुक्त होने का सच्चा मार्ग है। सौन्दर्य की मिठास क्या है, उसमे दोप क्या है, और उस दोप से हम किस प्रकार मुक्त हो सकते है, इस सब को जो बुद्धिमान् पुरुप यथार्थरीति से समझता है, वह स्वय तो रूपरस के विषय से मुक्त हो ही जायगा, दूसरो को भी सौन्दर्य-मुक्ति के मार्ग पर चलने की शिक्षा देगा।

१—१३ म नि. (महादुक्खक्खन्ध सुत्तत)

वैराग्य

१ जैसे थोडे पानी मे मछलिया तडपडाया करती है, वैसे ही एक दूसरे के साथ अदर-ही-अदर विरोध करके दौडधूप करते हुए लोगो को देखकर मेरे अत करण मे भय का प्रवेश हुआ।

२. मुझे कुछ ऐसा लगनें लगा कि यह जगत् असार है और समस्त दिशाएँ मानो काप रही है। इस जगत् मे मैंने अपने लिए आश्रय-स्थान खोजा, पर वह कही भी न मिला !

३. अरे, अततक ये लोग लडते ही रहेगे—यह देखकर मुझे दुनिया से अत्यत अरुचि होगई। तब अपने ही हृदय मे चुभा हुआ दुर्दर्श शल्य मुझे दिखाई दिया।

४. यदि शल्य से मनुष्य विधा हुआ है तो वह भागदौड मचायगा ही, पर यदि वह अतर मे विधा हुआ बाण खीचकर निकाल लिया जाय, तो अपनी सारी दौडधूप बद करके वह एक जगह स्थिर हो जायगा।

*

५ ओह ! कसी भयकर आग लगी है ! सब जल रहे हैं। नेत्रेन्द्रिय जल रही है। रूप जल रहा है। नेत्रेन्द्रिय से उत्पन्न विज्ञान भी जल रहा है। नेत्र का विषय जल रहा है।

६. ये सब किस आग से जल रहे है ? राग की आग से, द्वेष की आग से और मोह की आग से ये सब जल रहे हैं। जन्म,

जरा, मृत्यु, शोक, परिदेव, दु ख, दौर्मनस्य आदि परिणामो से ये सब जल रहे है ।

७. इसी प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय और उसका विषय शब्द, घ्राणेन्द्रिय और उसका विषय गध, जिव्हा और उसका विषय रस, त्वचा और उसका विषय स्पर्श, मन और उसका विषय धर्म—ये सभी जल रहे है । रागाग्नि, द्वेषाग्नि और मोहाग्नि इन्हे जला रही है ।

८ जन्म, जरा, मृत्यु, शोक, और दु ख को जानकर श्रुतवान् आर्यश्रावक (गृहस्थ) को चाहिए कि वह चक्षु और रूप, श्रोत और शब्द, घ्राण और गध, जिव्हा और रस, त्वचा और स्पर्श तथा मन और धर्म मे आसक्त न हो, निर्वेद के द्वारा विराग-निधि प्राप्त करले ।

९. विराग होने पर ही मनुष्य को ज्ञान उत्पन्न होता है, और तभी उसका जन्मक्षय होता है । ब्रह्मचर्यव्रत भी तभी समाप्त होता है । मनुष्य फिर यहा आकर जन्म नही लेता ।

*

१०. मैं जराधर्मी हूँ, व्याधिधर्मी हूँ, मरणधर्मी हूँ, इन तमाम प्रिय वस्तुओ और प्रियजनो से निश्चय ही एक दिन वियोग होगा। मै जो बुरा या अच्छा कर्म करूँगा, उसका मुझे ही भागीदार होना पडेगा । अत कर्म ही मेरा धन है, और कर्म ही मेरा मित्र ।

११. 'मैं जराधर्मी हूँ' ऐसा विचार करने से मनुष्य का यौवन-मद नष्ट होजाता है । इस तारुण्यमद के कारण मनुष्य काया, वचन और मन से पाप करता है, पर जो यह स्मरण रखता है कि मै खुद जराधर्मी हूँ, उसका यह मद नष्ट होजाता है—नष्ट नही, तो कुछ कम तो हो ही जाता है ।

१२. 'मैं व्याधिधर्मी हूँ' इस बात का चिंतन करने से यह लाभ होता है कि जिस आरोग्यमद के कारण मनुष्य त्रिविध पापो का आचरण करता है वह नष्ट होजाता है—नष्ट नही, तो कुछ कम तो हो ही जाता है।

१३. 'मैं मरणधर्मी हूँ' इस बात का चिंतन करते रहने से मनुष्य का जीवितमद नष्ट होजाता है है। यही इस चिंतन का लाभ है।

१४. 'तमाम प्रिय वस्तुओ और प्रियजनो से एकदिन वियोग होने को है' इस बात का स्मरण रखने से मनुष्य प्रिय वस्तु अथवा प्रियजन के अर्थ पापाचरण करने मे प्रवृत्त नही होता, और न उसे वियोग-दु ख का ही भाजन बनना पडता है।

१५. जिस वस्तु का जन्म हुआ है उसका नाश न हो, क्या यह शक्य है ?

१–४ सु नि (अत्तदड सुत्त) ५–९ बुद्धदेव (जगन्मोहन वर्मा) १०–१४. बु. ली. स (पृष्ठ २६३) १५. दी. नि. (महापरि-निब्बाण सुत्त)

वाद-विवाद

१. निंदा और स्तुति दोनो ही विवाद के विपफल है। ये क्षुद्र वस्तुएँ चित्त के उपशमन की कारणभूत नही बनती। अत विवाद कल्याणप्रद नही है, ऐसा जाननेवाला कभी विवाद मे नही पडता।

२ ये जो भिन्न-भिन्न मत-मतातर है, उन सबको विद्वान् लोग स्वीकार नही करते। दृष्ट और श्रुत के विषय मे जिसे राग उत्पन्न नही होता ऐसा निश्चल व्यक्ति विवाद मे पडकर क्यो चचल होने लगा ?

३. जिसे कुछ लोग परम धर्म मानते है उसे ही कुछ लोग हीन धर्म मानते है। ये सभी जब अपने को कुशल समझते है, तो फिर उनमे कौन वाद सच्चा है ?

४ वे कहते है कि हमारा ही धर्म परिपूर्ण है, और दूसरो का धर्म हीन है। इस प्रकार लडाई-झगडा खडा करके वे वाद-विवाद करते है, और कहते है कि हमारी ही दृष्टि सच्ची है।

५ मनुष्य यदि दूसरो की की हुई निंदा से ही हीन ठहरने लगे, तो फिर किसी भी पथ का मनुष्य श्रेष्ठ नही ठहर सकता, क्योकि अपने-अपने पथ को दृढ (नित्य)समझनेवाले लोग दूसरो के पथ को हीन ही कहते है।

६. और जिस तरह वे अपने-अपने पथ की स्तुति करते है उसे देखते हुए तो यही निश्चय होता है कि वे सभी सद्धर्म की

पूजा करते है, और सभी पथ सच्चे ठहरते है, क्योकि उस प्रत्येक पथ मे शुद्धि का निर्देश तो है ही।

७ पर ब्राह्मण को दूसरो से कुछ सीखना नही है, और उस का यह आग्रह भी नही कि सब पथो मे यही पथ श्रेष्ठ है। वह तो वाद-विवाद से परे चला जाता है, क्योकि वह यह नही मानता कि कोई भी धर्मपथ सर्वश्रेष्ठ है।

८. कुछ लोग यह समझते है कि जो हम जानते है, जो हम देखते है, केवल वही ठीक है और शुद्धि इसी दृष्टि से होगी। वे कहते है कि दूसरो के मार्ग से शुद्धि का मार्ग जुदा ही है। पर ऐसा कहने मे उन्हे क्या मिलता है ?

९. देखनेवाला केवल नामरूप ही देखेगा, और उसे देखकर उतना ही उसे ज्ञान होगा। वह न्यून अथवा अधिक भले ही देखे, पर विज्ञ जन यह नही कहते कि शुद्धि इतने से ही होती है।

१०. अपने कल्पित किये हुए मत को महत्व देनेवाले और हठपूर्वक वाद-विवाद करनेवाले मनुष्य को उपदेश से समझाना या शात करना कठिन है। जिस मत का वह आश्रय लेता है उसीमे कल्याण है और उसीमे शुद्धि है ऐसा वह कहता है और ऐसा ही मानता है।

११. किंतु ब्राह्मण की बात तो निराली ही है। वह कभी विकल्प मे नही पडता। वह दृष्टि का आग्रह नही रखता। ज्ञान को भी वह महत्व नही देता। वह भिन्न-भिन्न मतो को जानता है, और उनके अनुयायी लोगो की उपेक्षा करता है।

१२ इस जगत् मे ग्रन्थि का त्याग करके विवादापन्न लोगो के बीच मुनि स्वय पक्षपाती नही होता। वह इस अशान्त लोक

में शात और उपेक्षक बना रहता है। और जब दूसरे लोग अपने-अपने मत का आग्रह करते हैं, तब वह अनाग्रही रहता है।

१३. तृष्णा, काम, भव, दृष्टि और अविद्या इन पूर्व के आस्रवो (प्रवाहो) को तोडकर वह नये आस्रवो का सचय नही करता। साप्रदायिक मत-मतातरो से वह मुक्त हो जाता है, और इस जगत्-पाश मे बद्ध नही होता।

*

१४. जो सम, अधिक या न्यून समझता है, वही विवाद करता है। तीनो भेदो मे जो अचल है, उसकी दृष्टि मे सम क्या, अधिक क्या और न्यून क्या? जिसमे सम-विषम नही है, वह विवाद करे तो क्या और किसके साथ?

*

१५ सभी लोग इस बात का प्रतिपादन करते है, कि पथ तो हमारा ही शुद्ध है, दूसरो के पथो मे शुद्धि कहा? जिस पथ का हमने आश्रय लिया है, उसी पथ मे श्रेय है ऐसा कहनेवाले अपने को भिन्न-भिन्न पथो मे बाध लेते है।

१६. वे लोग वाद-विवाद करने के इरादे से सभा मे जाकर एक दूसरे को मूर्ख ठहराते है। अपने को शास्त्रार्थ मे कुशल समझनेवाले ये लोग वाहवाही लूटने की इच्छा से ही वाद-विवाद करते है।

१७. सभा मे जब वे शास्त्रार्थ करते है, तब प्रशसा लूटने की इच्छा से दूसरो पर वाणी का प्रहार करने लगते है। यदि वाद मे वे हार जाते है तो मारे शर्म के मुहँ छिपा लेते है, और जब उनकी निंदा होती है तो क्रोध में आकर दूसरो के दोष ढूढने लगते है।

१८. वाद-विवाद मे पडकर मनुष्य या तो दूसरो पर आघात कर बैठता है या खुद अपने को ही चोट पहुँचाता है। विवाद में यह विष देखकर उससे निवृत्त हो जाना ही अच्छा है, कारण कि उसमें सिवा एक प्रशसा के और कोई भी लाभ नही।

१९. सभा मे कभी-कभी दूसरो के वाद को भग करके वे प्रशसा प्राप्त करते है, और इससे उन्हे खूब हर्ष होता है। विजय के गर्व मे आसमान की तरफ सिर उठाकर चलते है। सभा मे विजय क्या होती है, मानो उनका जीवन कृतकृत्य हो जाता है।

२०. पर उनका यह विजय-गर्व ही अत मे उनके अध पात का कारण होता है। अत बुद्धिमान् मनुष्य को वाद-विवाद मे पड़ना ही नही चाहिए। वाद-विवाद से कुछ अत शुद्धि तो होती नही; तव फिर अहकार वढाने से लाभ ?

२१. वाद-विवाद के युद्ध मे प्रवृत्त करनेवाला मेरा अहकार पहले ही नष्ट हो चुका है। अव विवाद करूँ तो कैसे ?

२२. जिन्होने प्रतिपक्ष-बुद्धि को नष्ट कर दिया है, और जो अपने पथ की खातिर दूसरे पथो के साथ विरोधभाव नही रखते, और जिन्हे यह प्रतीत नही होता कि हमारा ही पथ सर्वश्रेष्ठ है, उनके पास जाकर, अरे वादी, तुझे क्या मिलने का है ?

*

२३. ये मनुष्य तो अपने-अपने मत से चिपटकर और दूसरो के साथ वाद-विवाद करके अपने को कुशल कहलाना चाहते है। कहते क्या है कि जिन्हे हमारे मत का ज्ञान है वेही धर्म के त्राता है, और जो हमारे इस मत को बुरा वतलाते है, वे कभी मुक्त होने के नही।

२४. इस प्रकार झगडा-टटा खडा करके ये लोग वाद-विवाद करते है, और दूसरो को वेवकूफ वनाते है। ये सव अपने को ही कुशल कहनेवाले हैं। इनके मत से फिर कौन-सा वाद सच्चा कहा जाय ?

२५. दूसरो के धर्म को न जाननेवाला मनुष्य यदि मूर्ख, पशु और हीनवुद्धि ठहराया जाय, तो फिर इन साप्रदायिक मतो से चिपटे रहनेवाले सभी मूर्ख और सभी हीनवुद्धि ठहरेगे।

२६. ये जो एक दूसरे को मूर्ख कहते हैं यह ठीक नही। क्योकि ये अपने-अपने मत को ही सत्य मानते है, और दूसरो को मूर्ख ठहराते हैं।

२७. कुछ लोग जिसे युक्तियुक्त सत्य मानते है, उसे ही दूसरे तुच्छ और असत्य वताते हैं, और इस तरह व्यर्थ का टटा खडा करके वाद-विवाद करते है। ये सब एक ही सत्य का प्रतिपादन क्यो नही करते ?

२८. हमारे ही मत मे अत्यत सार है, इस प्रकार के विचार को आश्रय देकर ये वाद-विवादी लोग अपने को कृतकृत्य मान रहे है। अहकार मे मत्त हो ये पूर्ण अभिमानी वन बैठे है। अपने मान से ही अपने को अभिषिक्त कर रहे हैं। यह सव साप्रदायिकता को कलेजे से लगाने का परिणाम नही तो क्या है ?

२९. 'शुद्धि तो इसी पथ मे है,' ऐसा वे प्रतिपादन करते है, और कहते है कि दूसरे पथो मे शुद्धि नही। इस प्रकार अपने ही पथ को दृढ वतलानेवाले ये सप्रदायपथी भिन्न-भिन्न पथो मे निविष्ट हो रहे हैं।

३०. जो मनुष्य मेरे पथ से भिन्न मत का प्रतिपादन करते है, वे शुद्धि के विरुद्ध जा रहे है और वे मुक्त नही हो सकते।

यही कारण है कि ये लोग अपने-अपने सम्प्रदाय के लोभ-पाश म बधे हुए हैं ।

३१. जिस मनुष्यने तमाम रूढ मतो को छोड दिया है, वह फिर किसी के साथ वाद-विवाद नही करता ।

*

३२. अस्थिर मनुष्य ही वाद-विवाद मे पडता है । निश्चल मनुष्य को क्या पडा है कि वह किसी के साथ वाद-विवाद करे ? जिसमे न आत्मबुद्धि है न अनात्मबुद्धि, उसके पास साम्प्रदायिकता का काम ही क्या ? उसने तो अपनी सारी साम्प्रदायिकता धोडाली है । फिर वह क्यो और किसके साथ वाद-विवाद करे ?

१—१३. सु नि (महावियूह सुत्त) १४ बु च (मागदिय सुत्तत) १५—२२. अट्ठक वग्ग (पसूर सुत्त) २३—३१ सु नि. (चूल वियूह सुत्त) ३२ सु नि (दुट्ठट्ठक सुत्त)

गृहस्थ के कर्त्तव्य

१. जिस आर्यश्रावक (गृहस्थ) को छै दिशाओ की पूजा करनी हो, वह चार कर्मक्लेशो से मुक्त हो जाए। जिन चार कारणो के वश होकर मूढ मनुष्य पापकर्म करने मे प्रवृत्त होता है, उनमे से उसे किसी भी कारण के वश नही होना चाहिए। और सपत्ति-नाश के उसे छहो दरवाजे वद कर देने चाहिए।

२. छै दिशाओ से यहा क्या तात्पर्य है ? माता-पिता को पूर्व दिशा, गुरु को दक्षिण दिशा, पत्नी को पश्चिम दिशा, वधु-बाधव को उत्तर दिशा, दास और मजदूर को नीचे की दिशा तथा साधु-सत को ऊपर की दिशा समझना चाहिए।

३ चार कर्म-क्लेश क्या है ? हिंसा, चोरी, व्यभिचार और असत्यभाषण ये चार कर्म-क्लेश है। गृहस्थ को इनसे हमेशा दूर रहना चाहिए।

४. किन चार कारणो के वश होकर मूढ जन पापकर्म करते है ? स्वेच्छाचार, द्वेष, भय और मोह के कारण अज्ञ जन पाप करते है। आर्यश्रावक को इनमे से किसी भी कारण के वश होकर पापकर्म मे प्रवृत्त नही होना चाहिए।

५. सपत्ति-नाश के छै दरवाजे कौन-से है ? मद्यपान, रात मे आवारागर्दी, नाच-तमाशे का व्यसन, जुआ, दुष्ट मनुष्यो की सगति और आलस्य।

६ मद्यपान के व्यसन से सपत्ति का नाश होता है, इसमे तो सदेह ही नही। फिर मद्यपान से कलह बढता है, और वह रोगो का घर तो है ही। इससे अपकीर्ति भी पैदा होती है। यह व्यसन लज्जा को नष्ट और वुद्धि को क्षीण कर देता है। मद्यपान के ये छै दुष्परिणाम है।

७ जिसे रात मे इधर-उधर घूमने-फिरने का चसका लग जाता है, उसका शरीर स्वय अरक्षित रहता है। उसकी स्त्री और बाल-बच्चे भी सुरक्षित नही रह सकते। वह अपनी सपत्ति नही सँभाल सकता। उसे हमेशा यह डर लगा रहता है कि कही कोई मुझे पहचान न ले। उसे झूठ वोलने की आदत पड जाती है। और वह अनेक कष्टो मे फँस जाता है।

८ नाच-तमाशे देखने मे भी कई दोष है। नाच-तमाशा देखने-वाला हमेशा इसी परेशानी मे पडा रहता है कि आज कहा नाच है, कहा तमाशा है, कहा गाना-बजाना है। अपने काम-धधे का उसे स्मरणतक नही रहता।

९ जुआरी आदमी जुए मे अगर जीत गया, तो दूसरे जुआरी उससे ईर्ष्या करने लगते है, और अगर हार गया तो उसे भारी दु ख होता है। और उसके धन का नाश तो होता ही है। उसके मित्र और उसके सगे सबधी भी उसकी बात पर विश्वास नही करते। उनकी ओर से उसे बारबार अपमान सहन करना पडता है। उसके साथ कोई नया रिश्ता नही जोडना चाहता, क्योकि लोगो को यह लगता है कि यह जुआरी आदमी अपने कुटुब का पालन-पोषण करने मे असमर्थ है।

१०. अव दुष्टो की सगति का दुष्परिणाम सुनो। धूर्त, दारू-खोर, लुच्चे, चोर आदि सभी तरह के नीच मनुष्यो का साथ होने से दिन-प्रतिदिन उसकी स्थिति गिरती ही जाती है, और अन्त मे वह हीन-से-हीन दशा को पहुँच जाता है।

११ आलस्य के भी फल महान् भयकर है। एक दिन आलसी आदमी इस कारण काम नही करता कि आज बडी कडाके की सरदी पड रही है, और दूसरे दिन वेहद गरमी के कारण वह काम से जी चुराता है। किसी दिन कहता है कि अव तो शाम होगई है, कौन काम करने जाय, और किसी दिन यह कहता है कि अभी तो वहुत सवेरा है, काम का वक्त अभी कहा हुआ ? इस तरह आज का काम कल के ऊपर छोडकर वह कोई नई सपत्ति तो उपार्जन कर नही सकता, और अपने पूर्वजो का पूर्वार्जित धन नष्ट करता जाता है।

१२. उपर्युक्त चारो कर्मक्लेशो, चारो पाप-कारणो और छओ विपत्ति-द्वारो का त्याग करने के वाद गृहस्थ को छै दिशाओ की पूजा आरभ करनी चाहिए। उपर्युक्त प्रत्येक दिशा के पाच-पाच अग है।

१३. माता-पितारूपी पूर्व दिशा की पूजा के ये पाच अग है :—

(१) उनका काम करना,
(२) उनका भरण-पोषण करना;
(३) कुल मे चले आये हुए सत्कर्मो को जारी रखना,
(४) माता-पिता की सपत्ति का भागीदार वनना,
(५) दिवगत माता-पिता के नामपर दान-धर्म करना।

यदि इन पाच अगो से माता-पिता की पूजा की जाय, तो वे अपने पुत्र पर पाच प्रकार का अनुग्रह करते हैं —

(१) पाप से उसका निवारण करते है,

(२) कल्याणकारक मार्ग पर उसे लेजाते है,

(३) उसे कला-कौशल सिखाते है,

(४) योग्य स्त्री के साथ उसका विवाह कर देते है,

(५) उपयुक्त समय आनेपर अपनी सपत्ति उसे सौंप देते हैं,

१४. गुरुरूपी दक्षिण दिशा की पूजा के ये पाच अग हैं —

(१) गुरु को देखते ही खडा होजाना,

(२) गुरु बीमार पडे तो उनकी सेवा करना,

(३) गुरु जो सिखावे उसे श्रद्धापूर्वक समझ लेना,

(४) गुरु का कोई काम हो तो कर देना,

(५) वह जो विद्या दे उसे उत्तम रीति से ग्रहण करना।

शिष्य यदि इन पाच अगो से गुरु की पूजा करता है, तो गुरु उसपर पाच प्रकार का अनुग्रह करता है —

(१) सदाचार की शिक्षा देता है;

(२) उत्तम रीति से विद्या पढाता है,

(३) जितनी भी विद्याए उसे आती है, उन सब का ज्ञान शिष्य को करा देता है;

(४) अपने सबधियो और मित्रो मे उसके गुणो का बखान करता है;

(५) जब कही बाहर जाता है, तब ऐसी व्यवस्था कर देता है कि जिससे शिष्य को खाने-पीने की कोई अडचन न पडे।

१५. पत्नी-रूपी पश्चिम दिशा की पूजा के ये पाच अग है —

(१) उसे मान देना,

(२) उसका अपमान न होने देना,

(३) एक पत्नीव्रत का आचरण करना,

(४) घर का कारबार उसे सौपना,

(५) उसे वस्त्र और आभूषणो की कमी न पडने देना।

पति यदि इन पाच अगो से पत्नी की पूजा करता है तो वह अपने पति पर पाच प्रकार का अनुग्रह करती है —

(१) घर मे सुदर व्यवस्था रखती है,

(२) नौकर-चाकरो को प्रेम के साथ रखती है,

(३) पतिव्रता रहती है,

(४) पति उसे जो सपत्ति देता है उसकी रक्षा करती है, उसे उडाती नही,

(५) घर के सब काम-काजो मे सदा तत्पर रहती है।

१६. बधु-बाधवरूपी उत्तर दिशा की पूजा के ये पाच अग है —

(१) जो वस्तु देनेयोग्य हो वह उन्हे देना,

(२) उनसे मधुर वचन बोलना,

(३) उनके उपयोगी बनना,

(४) उनके साथ निष्कपट व्यवहार रखना,

(५) समान भाव से बर्ताव करना।

जो आर्यश्रावक इन पाच अगो से अपने बधु-बाधवो की पूजा करता है, उस पर वे पाच प्रकार का अनुग्रह करते है —

(१) उस पर यकायक सकट आ पडने पर वे उसकी रक्षा करते है;

(२) सकट-काल में वे उसकी सपत्ति की भी रक्षा करते है,

(३) विपत्ति मे उसे धीरज बँधाते है;

(४) विपत्काल में उसका त्याग नही करते,

(५) उसके बाद उसकी सतान पर भी उपकार करते है।

१७. सेवको को सूचित करनेवाली जो नीचे की दिशा है, उसकी पूजा के पाच अग ये हैं :—

(१) उनकी शक्ति देखकर उनसे काम करने को कहना,

(२) उन्हे यथोचित वेतन देना;

(३) बीमार पडे तो उनकी सेवा-शुश्रूषा करना,

(४) यथावसर उन्हे उत्तम भोजन देना,

(५) समय-समय पर उनकी उत्तम सेवा के बदले उन्हे इनाम इत्यादि देना।

इन पाच अगो से मालिक अगर नौकरो की पूजा करता है, तो वे अपने मालिक पर पाच प्रकार का अनुग्रह करते है :—

(१) मालिक के उठने के पहले वे उठते है,

(२) मालिक के सोने के बाद वे सोते है,

(३) मालिक के माल-असवाब की चोरी नही करते;

(५) उत्तम रीति से काम करते है,

(५) अपने मालिक का यश गाते है।

१८. साधु-सतो की जो ऊपर की दिशा है, उसकी पूजा के ये पाच अग है :—

(१) शरीर से आदर करना;

(२) वचन से आदर करना;

(३) मन से आदर करना;

(४) भिक्षा के लिए आवें तो उन्हे किसी प्रकार की हानि न पहुँचाना,

(५) उन्हे उनके उपयोग की वस्तु देना।

इन पाच अगो से जो आर्य श्रावक साधु-सतो की पूजा करता है, उसपर वे साधु-सत छै प्रकार का अनुग्रह करते है.—

(१) पाप से उसका निवारण करते है,

(२) कल्याणकारक लार्ग पर उसे ले जाते है,

(३) प्रेमपूर्वक उस पर दया करते है,

(४) उसे उत्तम धर्म की शिक्षा देते है,

(५) शका-निवारण करके उसके मन का समाधान करते है,

(६) उसे सुगति का मार्ग दिखा देते है।

१९. दान, प्रिय वचन, अर्थचर्या और समानात्मकता अर्थात् दूसरो को अपने समान समझना, ये **लोक-संग्रह** के चार साधन है। बुद्धिमान् मनुष्य इन चारो साधनो का उपयोग करके जगत् मे उच्चपद प्राप्त करता है।

१—१६ बु॰ च (सिगालोवाद सुत्त)

चार सहवास

१ सहवास चार प्रकार का होता है :—

(१) शव, शव के साथ वास करता है,
(२) शव देवी के साथ सवास करता है,
(३) देव शव के साथ सवास करता है;
(४) देव, देवी के साथ सवास करता है ।

२ जिस घर मे पति हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, शराबी, दु शील, पापी, कृपण और कटुभाषी होता है, और उसकी पत्नी भी वैसी ही दुष्टा होती है, वहा शव, शव के साथ वास करता है ।

३. जिस घर में पति हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, शराबी, दु शील, पापी, कृपण और कटुभाषी होता है, और उसकी पत्नी अहिंसक, अचौर, सदाचारिणी, सच्ची, नशा न करनेवाली, सुशीला, पुण्यवती, उदार और मधुरभाषिणी होती है, वहा शव देवी के साथ सवास करता है ।

४. जिस घर मे पति अहिंसक, अचौर, सदाचारी, सच्चा, मद्य-विरत, सुशील, पुण्यात्मा, उदार और मधुरभाषी होता है, और उसकी पत्नी हिंसक, चोर, दुराचारिणी, झूठी, नशा करने-वाली, दु शीला, पापिनी, कजूस और कटुभाषिणी होती है, वहा देव शव के साथ सहवास करता है ।

५. जिस घर में पति और उसकी पत्नी दोनो ही अहिंसक, अचौर, सदाचार-रत, नशाविरत, सुशील, पुण्यवत, उदार और मधुरभाषी होते है, वहा देव देवी के साथ सहवास करता है।

१—५ अ नि (४ : २ . १ : ३)

मित्र और अमित्र

१. जो मद्यपानादि के समय या आखो के सामने प्रिय वन-जाता है, वह सच्चा मित्र नही। जो काम निकलजाने के वाद भी मित्र वना रहता है वही मित्र है।

२. इन चारो को मित्र के रूप मे अमित्र समझना चाहिए –

(१) दूसरो का धन हरण करनेवाला,

(२) कोरी वाते वनानेवाला;

(३) सदा मीठी-मीठी चाटुकारी करनेवाला,

(४) हानिकारक कामो में सहायता देनेवाला।

३. जो वुरे काम मे अनुमति देता है, सामने प्रशसा करता है, पीठ पीछे निंदा करता है, वह मित्र नही, अमित्र है।

४. जो मद्यपान-जैसे प्रमाद के कामो मे साथ और आवारा-गर्दी में प्रोत्साहन देता है और कुमार्ग पर ले जाता है वह मित्र नही, अमित्र है। ऐसे शत्रुरूपी मित्र को खतरनाक रास्ते की भाति छोड देना चाहिए।

५. वास्तविक सुहृद इन चार प्रकार के मित्रो को समझना चाहिए —

(१) सच्चा उपकारी,

(२) सुख-दुःख मे समान साथ देनेवाला,

(३) अर्थप्राप्ति का उपाय वतलानेवाला,

| (४) सदा अनुकपा करनेवाला ।

६. जो प्रमत्त, अर्थात् भूल करनेवाले की और उसकी सपत्ति की रक्षा करता है, भयभीत को शरण देता है, और सदा अपने मित्र का लाभ दृष्टि मे रखता है, उसे उपकारी सुहृद समझना चाहिए ।

७. जो अपना गुप्त भेद मित्र को बतला देता है, मित्र की गुप्त बात को गुप्त रखता है, विपता मे मित्र का साथ देता है, और उसके लिए अपने प्राण भी होम देने को तैयार रहता है, उसे ही सच्चा सुहृद समझना चाहिए ।

८ जो पाप का निवारण करता है, पुण्य का प्रवेश कराता है, और सुगति का मार्ग बतलाता है वही 'अर्थ-आख्यायी', अर्थात् अर्थप्राप्ति का उपाय बतानेवाला सच्चा सुहृद है ।

९. जो मित्र की बढती देखकर प्रसन्न होता है, मित्र की निंदा करनेवाले को रोकता है, और प्रशसा करने पर प्रशसा करता है, वही सच्चा अनुकपक मित्र है ।

ऐसे मित्रो की सत्कारपूर्वक माता-पिता और पुत्र की भाति सेवा करनी चाहिए ।

*

१०. जगत् में विचरण करते-करते अपने अनुरूप यदि कोई सत्पुरुष न मिले, तो दृढता के साथ अकेला ही विचरे; मूढ के साथ मित्रता नही निभ सकती ।

*

११. जो छिद्रान्वेपण किया करता है, और मित्रता टूट जाने के भय से सावधानी के साथ वर्तता है, वह मित्र नही है ।

पिता के कंधे पर बैठकर जिस प्रकार पुत्र विश्वस्त रीति से सोता है उसी प्रकार जिसके साथ विश्वासपूर्वक बर्ताव किया जा सके, और दूसरे लोग जिसे फोड न सके, वही अच्छा मित्र है।

*

१२. अकेला विचरना अच्छा है, किंतु मूर्ख मित्र का सहवास अच्छा नही।

*

१३. यदि कोई होशियार, सुमार्ग पर चलनेवाला और धैर्य-वान् साथी मिल जाय, तो तमाम विघ्न-बाधाओं को झेलते हुए भी उसके साथ रहना चाहिए।

१—९ दी नि (सिगालोवाद सुत्त) १० ध प (बाल वग्गो) ११ सु नि. (हिरि सुत्त) १२ सु. च (पारिलेयक सुत्त) १३ सु नि (खग्गविसाण सुत्त)

जाति नैसर्गिक कैसी ?

१. जाति मत पूछ, तू तो बस, एक आचरण पूछ। देख, आग चाहे जैसे काष्ठ से पैदा होती है। इसी प्रकार नीचकुल का मनुष्य भी घृतिमान्, सुविज्ञ और निष्पाप मुनि होता है।

*

२. तो क्या तुम ऐसा मानते हो कि यहा मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा विविध जातियो के सौ मनुष्यो को एकत्रित करे और उनसे कहे कि, "आप सब, जो क्षत्रिय-कुल से, ब्राह्मण-कुल से और राजन्य-कुल से उत्पन्न है, यहा आवे—और साखू की या शाल वृक्ष की अथवा चन्दन की या पद्मकाष्ठ की अरणी लेकर आग बनावे, तेज पैदा करे—

और, आप लोग भी आवे, जो चाण्डाल-कुल से, निषाद-कुल से, वसोर-कुल से, रथकार-कुल से और पुक्कस-कुल से उत्पन्न हुए हैं, और कुत्ते के पीने की, सूअर के पीने की कठौती (कठरी), धोबी की कठौती की या रेड की लकडी की अरणी लेकर आग बनावे, तेज पैदा करे"—

तो क्या तुम मानते हो कि क्षत्रिय-ब्राह्मण-वैश्य-शूद्रकुलो से उत्पन्न पुरुषो-द्वारा साखू-शाल-चन्दन-पद्म की अरणी लेकर जो आग उत्पन्न की गई है, जो तेज पैदा किया गया है, वही अर्चिमान् (लौवाली), वर्णवान् और प्रभास्वर अग्नि होगी ?

और, चाण्डाल-निषाद-बसोर-रथकार-पुक्कस-कुलोत्पन्न पुरुषो-द्वारा श्वपान-कठरी की, शूकर-पान-कठरी की तथा रेड-काष्ठ की अरणी लेकर जो आग उत्पन्न की गई है, जो तेज पैदा किया गया है, वह अर्चिमान्, वर्णवान् और प्रभास्वर अग्नि न होगी ? क्या उस आग से अग्नि का काम नही लिया जा सकेगा ?

*

३. यह तो तुम जानते ही हो कि जीव-जन्तुओ में एक दूसरे से बहुत-सी विभिन्नताएँ और विचित्रताएँ पाई जाती हैं, और उनमे श्रेणिया भी अनेक है ।

इसी प्रकार वृक्षो और फलो मे भी विविध प्रकार के भेद-प्रभेद देखनें मे आते है, उनकी जातिया भी कई प्रकार की है।

देखो न साप कितनी जातियो के हैं ! जलचरो और नभचरो के भी असख्य स्थिर भेद है, जिनसे उनकी जातिया लोक मे भिन्न-भिन्न मानी जाती है ।

४. परन्तु मनुष्यो मे ? मनुष्यो के शरीर में तो ऐसा कोई भी पृथक् चिह्न (लिंग), भेदक चिह्न कही देखने मे नही आता । उनके केश, सिर, कान, आख, मुख, नाक, गर्दन, कधा, पेट, पीठ, हथेली, पैर, नाखून आदि अगो मे कहा हैं वैसी स्थिर विभिन्नताएँ ?

५. जो मनुष्य गाय चराता है उसे हम चरवाहा कहेगे, ब्राह्मण नही ।

६. जो व्यापार करता है वह व्यापारी ही कहलायगा, और शिल्प करनेवाले को हम शिल्पी ही कहेगे, ब्राह्मण नही ।

७. दूसरो की परिचर्या करके जो अपनी जीविका चलाता है, वह परिचर ही कहा जायगा, ब्राह्मण नही ।

८ अस्त्र-शस्त्रो से अपना निर्वाह करनेवाला मनुष्य सैनिक ही कहा जायगा, ब्राह्मण नही।

९. अपने कर्म से कोई किसान है तो कोई शिल्पकार। कोई व्यापारी है तो कोई अनुचर। कर्म पर ही यह जगत् स्थित है। अपने कर्म से एक मनुष्य ब्राह्मण बन जाता है और दूसरा अब्राह्मण।

१०. प्राणि-हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, चुगलखोर, कटु-भाषी, बकवादी, लोभी, द्वेषी और झूठी धारणावाला चाहे ब्राह्मण हो चाहे क्षत्रिय अथवा वैश्य हो या शूद्र, मरने के बाद वह दुर्गति को प्राप्त होगा, नरकगामी होगा।

*

११ क्या केवल ब्राह्मण ही प्राणि-हिंसा, चोरी, दुराचार, झूठ, चुगलखोरी, कटुवचन, बकवाद, लोभ और द्वेष से विरत होकर सुगति को प्राप्त हो सकता है? क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नही?

१२. क्या केवल ब्राह्मण ही वैर-रहित और द्वेप-रहित होकर मैत्री की भावना कर सकता है? क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नही? नही, ऐसी भावना ब्राह्मण भी कर सकता है, क्षत्रिय भी कर सकता है, वैश्य भी कर सकता है और शूद्र भी कर सकता है।

१३. क्या ब्राह्मण ही मागलिक स्नानचूर्ण लेकर नदी मे मैल धो सकता है? क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नही?

१४ दो जुडवा भाई है। एक तो अध्ययनशील और उपनीत, किन्तु दुराचारी और पापी है; और दूसरा अन्-अध्ययनशील, अन्-उपनीत, किन्तु शीलवान् और धर्मात्मा है। इनमे से यज्ञ अथवा

आतिथ्य मे प्रथम भोजन आप किसे करायँगे ? उसी को ना, जो अन्-अध्ययनशील और अन्-उपनीत होते हुए भी शीलवान् और धर्मात्मा है ?

१५. माता-पिता के रज-वीर्य से जन्म लेनेवाला जीव न क्षत्रिय होता है, न ब्राह्मण—न वैश्य होता है, न शूद्र ।

*

१६. उच्चकुलवाला भी प्राणि-हिंसक, चोर, मिथ्याचारी, झूठा, चुगलखोर, कटुभाषी, वकवादी, लोभी और द्वेषी होता है। इसलिए मै उच्चकुलीनता को श्रेय नही देता । साथ ही, उच्च-कुलीनता को मै 'पापीय' भी नही कहता, क्योकि उच्चकुलवाला मनुष्य भी अहिंसक, अचोर, मिथ्याचार-विरत, अद्वेषी आदि होता है ।

१७. नीचकुलोत्पन्न भी, इसी तरह, हिंसक होता है और अहिंसक भी, सच्चा होता है और झूठा भी, लोभी होता है और लोभ-विरत भी, द्वेषी होता है और अद्वेषी भी ।

*

१८. जिस आश्रय को लेकर आग जलती है, वही उसकी सज्ञा होती है । काष्ठ से जलनेवाली आग की सज्ञा काष्ठ-अग्नि, और गोमय (उपले) के आश्रय से जलनेवाली आग की सज्ञा गोमय-अग्नि होती है । किन्तु आग का काम इन सभी अग्नियो से लिया जा सकता है ।

*

१९. यवन और कम्बोज तथा दूसरे भी सीमान्त प्रदेशो मे दो ही वर्ण होते है—आर्य और दास । मनुष्य वहा आर्य से दास

हो सकता है, और दास से आर्य । फिर इसका कोई अर्थ नहीं, कि अमुक वर्ण ही जन्मना श्रेष्ठ वर्ण है।

*

२०. जो मनुष्य जातिवाद और गोत्रवाद के बन्धन मे बँधे हुए है, वे अनुपम विद्याचरण सम्पदा से दूर ही है ।

*

---

१. बु. च. (अत्तदीप सुत्त) २. म नि (अस्सलायण सुत्तन्त) ३—१० म नि (वासेट्ठ सुत्तन्त) ११—१५ म नि (अस्सलायण सुत्तन्त) १६—१८ म नि (फासुकारि सुत्तन्त) १९ म नि (अस्सलायण सुत्तन्त) २० बु च (अम्बट्ठ सुत्त)

ब्राह्मण किसे कहे ?

१. ब्राह्मण मै उसे कहता हूँ, जो अपरिग्रही है। जिसने समस्त बधन काटकर फेक दिये है, जो भय-विमुक्त हो गया है और जो सग एव आसक्ति से विरत है, मै उसीको ब्राह्मण कहता हूँ।

२ जो बिना चित्त बिगाडे गाली, हनन और बधन को सहन करता है, क्षमा-बल ही जिसके साधन-सैनिको का सेनानी है, मै उसीको ब्राह्मण कहता हूँ।

३. जो अक्रोधी है, व्रती है, शीलवान् है, बहुश्रुत है, सयमी है और अतिम शरीरवाला है, उसे ही मै ब्राह्मण कहता हूँ।

४. कमल के पत्ते पर जल की भाति, और आरे की नोक पर सरसो की तरह जो विपय-भोगो मे लिप्त नही होता, मै उसे ही ब्राह्मण कहता हूँ।

५. चर-अचर सभी प्राणियो मे प्रहार-विरत हो जो न मारता है न मारने की प्रेरणा करता है, उसे मै ब्राह्मण कहता हूँ।

६. जो इस प्रकार की अकर्कश, आदरयुक्त और सत्यवाणी बोलता है कि जिससे जरा भी पीडा नही पहुँचती, मै उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

७ बडी हो चाहे छोटी, मोटी हो चाहे पतली, शुभ हो या अशुभ जो ससार मे किसी भी बिना दी हुई चीज को नही लेता उसे मै ब्राह्मण कहता हूँ।

८ जिसने यहा पुण्य और पाप दोनो की ही आसक्ति छोड दी है, और जो शोकरहित, निर्मल और परिशुद्ध है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

९ मानुप भोगो का लाभ छोड दिव्य भोगो के लाभ को भी जिसने लात मार दी है, किसी भी लाभ-लोभ मे जो आसक्त नही, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

१०. राग और घृणा का जिसने त्याग कर दिया है, जिसका स्वभाव शीतल है, और जो क्लेशरहित है ऐसे सर्वलोकविजयी वीर पुरुष को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

११. जिसके पूर्व, पश्चात् और मध्य मे कुछ नही है, और जो पूर्णतया परिग्रह-रहित है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

*

१२. जो ध्यानी, निर्मल, स्थिर, कृतकृत्य और आस्रव-(चित्तमल) रहित है, जिसने सत्य को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

१३. जो न मन से पाप करता है, न वचन से और न काया से, मन, वचन और काया पर जिसका सयम है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

१४. न जटा रखाने से कोई ब्राह्मण होता है, न अमुक गोत्र से, और न जन्म से ही। जिसने सत्य और धर्म का साक्षात्कार कर लिया, वही पवित्र है, वही ब्राह्मण है।

१५. जो गभीर प्रज्ञावाला है, मेधावी है, मार्ग और अमार्ग का ज्ञाता है, और जिसने सत्य पा लिया है, उसे मे ब्राह्मण कहता हूँ।

१६. जिसने तृष्णा का क्षय कर दिया है, जो भली भाति जानकर अकथ पद का कहनेवाला है, और जिसने अगाध अमृत प्राप्त कर लिया है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

१७ जो पूर्वजन्म को जानता है, सुगति और अगति को जो देखता है, और जिसका पुनर्जन्म क्षीण हो गया है, तथा जो अभिज्ञा-(दिव्यज्ञान) परायण है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

*

१८ मूर्खों की धारणा मे यह चिरकाल से घुसा हुआ है कि 'ब्राह्मण जन्म से होता है', ज्ञानी पुरुष यह कदापि नही कहेगे कि ब्राह्मण जन्म से होता है।

१९. अमुक माता की योनि से उत्पन्न होने के कारण मैं किसी मनुष्य को ब्राह्मण नही कहता।

२०. जो पुरोहिताई से अपनी जीविका चलाता है वह ब्राह्मण नही, याचक है।

*

२१. ब्राह्मण पर प्रहार नही करना चाहिए, और ब्राह्मण को भी उस प्रहारक पर कोप नही करना चाहिए। ब्राह्मण पर जो प्रहार करता है उसे धिक्कार है। और उसे भी धिक्कार है, जो उसके लिए कोप करता है।

*

२२. प्राचीन ब्राह्मणो के पास न पशु थे, न सुवर्ण, न धान्य। उनके पास तो एक स्वाध्याय का ही धन-धान्य था। वे तो ब्रह्मनिधि के धनी थे।

२३. वे सयतात्मा और तपस्वी होते थे। विषय-भोगो को छोडकर वे सदा ज्ञान और ध्यान मे ही निरत रहते थे।

२४. विविध वर्ण के वस्त्रो, शैयाओ और अतिथिशालाओ से समृद्ध राष्ट्र उन ब्राह्मणो को अभिवदन करते थे ।

२५. ब्राह्मण अवध्य थे, अजेय थे और धर्म से अभिरक्षित थे।

२६. प्राचीन काल के वे ब्राह्मण अडतालीस वर्षतक अखंड कौमार ब्रह्मचर्य पालत करते थे ।

२७. उस युग के ब्राह्मण विद्या और आचरण की शोध मे रहते थे ।

२८. वे लोग ब्रह्मचर्य, शील, अकुटिलता, मृदुता, तपस्या, सुप्रीति, अहिसा, और क्षमा के प्रशसक थे ।

*

२९. ब्राह्मण कौन ? जो निष्पाप है, निर्मल है, निरभिमान है, सयत है, वेदातपारगत है, ब्रह्मचारी है, ब्रह्मवादी है और धर्मप्राण है, वही ब्राह्मण है ।

*

३०. जिसने सारे पाप अपने अत करण से दूर कर दिये, अहकार की मलिनता जिसकी अतरात्मा का स्पर्श भी नही कर सकती, जिसका ब्रह्मचर्य परिपूर्ण है, जिसे इस लोक के किसी भी विपय की तृष्णा नही, जिसने अपनी अतर्दृष्टि से ज्ञान का अत देख लिया, वही अपने को यथार्थरीति से ब्राह्मण कह सकता है।

१—११ म नि (वासेठ्ठ सुत्तन्त) १२—१७ ध प (ब्राह्मण वग्गो) १८—२० म नि (वासेठ्ठ सुत्तन्त) २१ ध प (ब्राह्मण वग्गो) २२—२८ सु च (ब्राह्मण धम्मिय सुत्त) २९ वि पि. (महावग्ग) ३० वि. पि (महावग्ग)

चांडाल कौन ?

१. क्रोधी, वैर माननेवाला, पापी, गुणीजनो को दोष देनेवाला, मिथ्या दृष्टि रखनेवाला और मायावी मनुष्य ही वृषल, अर्थात् चाडाल है।

२. जो प्राणियो का वध करता है, प्राणियो के ऊपर जो दयाभाव नही रखता, उसे चाडाल समझना चाहिए।

३. जो गावो और नगरो को लूटता और वीरान कर देता है, दुनिया मे जो लुटेरे के नाम से पहिचाना जाता है, उसे चाडाल समझना चाहिए।

४. जो मनुष्य कर्ज तो लेता है, पर जव लेनदार मागने आता है तो साफ नट जाता है और कहता है कि मुझे तो तेरा कुछ देना ही नही, उसे चाडाल समझना चाहिए।

५. जो अपने लिए, दूसरो के लिए अथवा पैसे के लिए झूठ बोलता है, उसे चाडाल समझना चाहिए।

६. जो बलात्कार से अथवा प्रेम से अपने इष्टमित्रो की स्त्रियो के साथ व्यभिचार करता है, उसे चाडाल समझना चाहिए।

७. जो समर्थ होते हुए भी अपने वृद्ध माता-पिता का पालन-पोषण नही करता, उसे चाडाल समझना चाहिए।

८. लाभ का हितकर उपाय पूछने पर जो हानिकारक उपाय सुझाता है, अथवा सदिग्ध वचन बोलता है, उसे चाडाल समझना चाहिए।

९. जो दूसरो के घर जाकर उनका आतिथ्य स्वीकार करता है, पर यदि वे लोग कभी उसके घर आ जायँ, तो वह उनका आदर-सत्कार नही करता, ऐसा मनुष्य चाण्डाल नही तो क्या है?

१०. जो अहभाव के कारण पतित होकर आत्मस्तुति और परनिंदा करता है, उसे चाडाल समझना चाहिए।

११. जो मनुष्य क्रोधी, कृपण, मत्सरयुक्त, शठ और निर्लज्ज होता है और जिसे लोकनिंदा के भय की तनिक भी पर्वा नही, उसे चाडाल समझना चाहिए।

१२. जो अनर्ह (अयोग्य) होकर भी अपने को योग्य समझता है, वह ब्रह्मलोक मे चोर है, और ऐसे पुरुप को वृषलाधम (नीचातिनीच चाडाल) कहते है।

१३. केवल जन्म से कोई वृषल या चाडाल नही होता, और न जन्म से कोई ब्राह्मण ही होता है। कर्म से मनुष्य चाडाल होता है, और कर्म से ही ब्राह्मण।

१—१३ सु नि. (वसलसुत्त)

भिक्षु

१. जिस भिक्षुने शकाओ का प्रवाह पार कर लिया है, जिसने तृष्णा का शल्य निकालकर फेक दिया है, निर्वाण मे जिसकी लौ लगी हुई है, जो निर्लोभी है और सदेवक जगत् का नेता है, उसे **मार्गजिन** भिक्षु कहते है ।

२. निर्वाण-पद को जानकर जो धर्मोपदेश तथा धर्म का विवेचन करता है, उस शका-निवारक मुनि को **मार्गदेशक** भिक्षु कहते है ।

३. उत्तम रीति से उपदिष्ट धर्ममार्ग मे जो सयमी है, स्मृतिमान् है और निर्दोष पदार्थो का सेवन करता है, उसे **मार्गजीवी** भिक्षु कहते है ।

४ साधुओ का वेश धारण करके सघ मे जवर्दस्ती घुस जानेवाला जो धृष्ट भिक्षु गृहस्थो की अपकीर्त्ति फैलाता है और जो मायावी, असयमी तथा ढोगी होते हुए भी साधु के रूप मे दुनिया को ठगता फिरता है, उसे **मार्गदूषक** भिक्षु कहते है ।

*

५ सघ मे यदि कोई गृहासक्त, पापेच्छ, पाप-सकल्पी और पापाचारी भिक्षु देखने मे आवे, तो तुम सव मिलकर उसका वहिष्कार करदो, उस कचरे को फेकदो, सघ के उस सडे हुए हिस्से को छील डालो ।

*

६. काया और वचन से जो शान्त है, भलीभाति जो समाहित अर्थात् समाधियुक्त है, जिसने जगत् के तमाम लोभो को अस्वीकार कर दिया है, उस भिक्षु को 'उपशान्त' भिक्षु कहते हैं ।

*

७ जो भिक्षु अपनी तरुणाई में बुद्ध के शासन (बुद्ध-धर्म) मे योग देता है, वह इस लोक को इस प्रकार प्रकाशित करता है, जैसे मेघो से मुक्त चन्द्रमा ।

*

८ अतिशय प्रमोदयुक्त और बुद्ध-शासन मे प्रसन्नचित्त भिक्षु उस सुखमय प्रशान्त पद को प्राप्त कर लेता है, जिसमे मनुष्य की समस्त वासनाएँ शान्त हो जाती हैं ।

*

९. जो धर्म मे रमण करता है, धर्म मे रत रहता है, और धर्म का चिन्तन और धर्म का अनुसरण करता है, वह भिक्षु सद्धर्म से पतित नही होता ।

*

१० जो भिक्षु मैत्री भावना से विहार करता है और बुद्ध के शासन (धर्म) मे श्रद्धावान् रहता है, वह सुखमय शान्तपद को प्राप्त कर लेता है, उसकी समस्त वासाएँ समाप्त हो जाती है ।

*

११. भिक्षु को अपनी निन्दा सुनकर अस्वस्थ और स्तुति सुनकर गर्वोन्मित्त नही होना चाहिए । लोभ, मात्सर्य, क्रोध और निन्दा का उसे सदा के लिए परित्याग कर देना चाहिए ।

१—४ सु नि (चुन्द सुत्त) ५. सु नि. (धम्मचरिय सुत्त) ६—१०. ध. प (भिक्खुवग्गो) ११ सु. नि. (तुवट्टक सुत्त)

सम्यक् परिव्राजक

१. जो लौकिक एव दिव्य कामसुख मे आसक्त नही, वही धर्मज्ञ भिक्षु ससार का अतिक्रमण करके सम्यक् परिव्राजक हो सकता है ।

२. जो भिक्षु निन्दा, क्रोध और कृपणता का त्याग कर देता है, वह अनुरोध-विरोध से मुक्त होकर इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक कहा जाता है ।

३. प्रिय और अप्रिय का त्याग करके जो सर्वत्र अनासक्त, अनाश्रित तथा सयोजनो से विमुक्त है वही इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक है ।

४ उपाधि को जो निस्सार समझता है और ग्रहण करने मे जो लोभ (छन्दराग) का निरसन करता है, इस जगत् मे वही सम्यक् परिव्राजक है ।

५. भलीभाति धर्म का तत्व समझकर जो मन, वचन और कर्म से दूसरो के साथ अविरोध रीति से बर्ताव करता है, जो निर्वाण-पद की इच्छा रखता है, उसीको मै इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक कहूँगा ।

६. लोभ और आसक्ति को छोडकर जो छेदन-बन्धन से विरत हो गया है, शकाओ को पार कर गया है, और जिसके हृदय से तृष्णा का शल्य निकल गया है, वही भिक्षु इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक है ।

७. अपना कर्तव्य धर्म समझकर जो भिक्षु किसी भी प्राणी की हिंसा नही करता, वही इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक है ।

८. जिसके आस्रव (दोप) क्षीण तथा अहकार नष्ट हो गया है, जो कामसुखो को लात मारकर ससार-समुद्र को पार कर गया है और जो दान्त, शान्त और स्थिरात्मा है, वही इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक है ।

९. जो अतीत और अनागत सस्कारो की कल्पना को पार कर गया है, जिसकी प्रज्ञा अत्यन्त विशुद्ध है ओर जो समस्त आयतनो से मुक्त हो गया है वही इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक है ।

*

१०. 'आर्यसत्यो' को जानकर और धर्म को समझकर तथा आस्रवो का विनाश स्पष्टतापूर्वक देखकर जो समस्त उपाधियो का क्षय कर देता है, वही इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक है ।

*

११. ऊपर, नीचे और चारो ओर अथवा मध्य मे जो भी दु खकारक कर्म है, उसे त्यागकर जो विचारपूर्वक वर्तता है, जिसने माया, मान, क्रोध और नामरूप को नष्ट कर दिया है उस पूर्णत्वप्राप्त पुरुप को सम्यक् परिव्राजक कहते है ।

१—१० सु नि (सम्मा परिव्बाजनिय सुत्त) ११. सु नि (सभिय सुत्त)

प्रश्नोत्तरी

१. प्रश्न—(१) जूठन क्या है ?

(२) दुर्गन्ध क्या है ?

(३) मक्खियां क्या हैं ?

उत्तर—(१) लोभ और राग जूठन है।

(२) द्रोह दुर्गन्ध है।

(३) अकुशल वितर्क, अर्थात् बुरे विचार मक्खियां हैं।

*

२. प्रश्न—(१) जगत् का संयोजन क्या है ?

(२) उसकी विचारणा (चिंता) क्या है ?

(३) किस धर्म के नाश से उसे निर्वाण प्राप्त होता है ?

उत्तर—(१) लोभ या तृष्णा जगत् का संयोजन है।

(२) वितर्क उसकी विचारणा है।

(३) तृष्णा के नाश से जगत् को निर्वाण प्राप्त होता है ?

*

३. प्रश्न—किस प्रकार के वर्ताव से मनुष्य के विज्ञान (चित्त की धारा) का निरोध होता है ?

उत्तर—आतरिक और वाह्य वेदनाओ का अभिनदन न करते हुए जो वर्तता है, उसका विज्ञान निरुद्ध हो जाता है।

*

४. प्रश्न—(१) यह जगत् किससे ढका हुआ है ?
(२) किसके कारण यह प्रकाशित नही होता ?
(३) इसका अभिलेपन क्या है ?
(४) इसे महाभय क्या है ?

उत्तर—(१) यह जगत् अविद्या से ढँका हुआ है।
(२) मात्सर्य और प्रमाद के कारण यह प्रकाशित नही होता।
(३) वासना इसका अभिलेपन ह।
(४) जन्मादि दु ख इसका महाभय है।

५ प्रश्न—(१) चारो ओर जो ये प्रवाह वह रहे है, इनका निवारक क्या है ?
(२) प्रवाहो का नियमन क्या है ?
(३) ये प्रवाह किस वस्तु से रोके जा सकते है ?

उत्तर—(१) जगत् मे जो ये प्रवाह वह रहे है उनकी निवारक स्मृति है।
(२) स्मृति ही उन प्रवाहो की नियामक है।
(३) प्रज्ञा से वे रोके जा सकते है।

६. प्रश्न—'प्रज्ञा' और 'स्मृति' इन नामरूपो का निरोध कहा होता है ?

उत्तर—नाम और रूप का पूर्णत निरोध विज्ञान के निरोध से होता है।

७. प्रश्न—ससार की तरफ मनुष्य किस प्रकार देखे, कि जिससे मृत्युराज उसकी ओर न देख सके ?

उत्तर—सदैव स्मृति रखते हुए इस तरह देख कि जगत् शून्य है। इस भाति आत्मदृष्टि को त्याग देनेवाला मनुष्य मृत्यु को पार कर जाता है। इस प्रकार ससार की तरफ देखनेवाले मनुष्य की ओर मृत्युराज नही देखता।

*

८ प्रश्न—जो कामोपभोगो से विमुक्त है, तृष्णा से रहित है, और सशयो को पार कर गया है, उसका मोक्ष किस प्रकार का होता है ?

उत्तर—जो कामोपभोगो से विमुक्त है, तृष्णा से रहित है और सशयो से पार होगया है, उसके लिए मोक्ष-जैसा कोई पदार्थ रहता ही नही। (वही उसका मोक्ष है।)

९. प्रश्न—(१) वह वासना-रहित होता है, या उसकी कोई वासना बाकी रहती है ?
(२) वह प्रज्ञावान् होता है, या प्रज्ञा की कल्पना करनेवाला ?

उत्तर—(१) वह वासना-रहित होता है, उसकी कोई वासना शेष नही रहती।
(२) वह प्रज्ञावान् होता है, प्रज्ञा की कल्पना करनेवाला नही। वह मुनि सर्वथा कामभव मे अनासक्त और अकिंचन होता है।

*

१०. प्रश्न—महान् भयानक बाढ के बीचोबीच ससार के मध्यभाग मे खडे हुए जरा-मृत्युपरायण मनुष्य के लिए कौन-सा द्वीप शरणस्थान है ?

उत्तर—आकिंचन्य और अनादान (ग्रहण न करना) ही उसके लिए महान् विशाल द्वीप है, जिसे मैं जरा और मृत्यु का क्षय करने-वाला 'निर्वाण' कहता हू ।

यह जानकर जो स्मृतिमान् लोग इसी जन्म मे परिनिर्वाण प्राप्त कर लेते है, वे मार (विषय) के वश नही होते, वे मार का अनुसरण नही करते ।

*

११. प्रश्न—इस जगत् मे लोग अनेको को मुनि कहते है, पर क्या उनका यह कहना ठीक है ? वे ज्ञानसपन्न पुरुष को मुनि कहते है या केवल व्रतादि उपजीविका-सपन्न को ?

उत्तर—दृष्टि से, श्रुति से अथवा ज्ञान से कोई मुनि नही होता, ऐसा पडितजन कहते है । मन के समस्त विरोधों का नाश करके जो निर्दुःख और निस्तृष्ण होकर रहता है उसे ही मैं मुनि कहता हूँ ।

१२. प्रश्न—(१) इस जगत् मे किसे सतुष्ट कहना चाहिए ?
(२) तृष्णाएँ किसे नही है ?
(३) कौन दोनो अतो को जानकर मध्य मे स्थित हो प्रज्ञा से लिप्त नही होता ?
(४) 'महापुरुष' किसे कहते है ?
(५) इस जगत् मे कौन तृष्णा को पार करता है ?

उत्तर—(१) जो कामोपभोगो का परित्याग करके ब्रह्मचारी, वीततृष्ण और सदैव स्मृतिमान् रहता है, उसे ही सतुष्ट कहना चाहिए।

(२) उसे ही तृष्णाएँ नही सताती।

(३) वह दोनो अतो को जानकर मध्य मे स्थित हो प्रज्ञा से लिप्त नही होता।

(४) उसे ही मैं 'महापुरुप' कहता हूँ।

(५) इस जगत् में वही महापुरुप तृष्णा-तरगिणी को पार कर सकता है।

१३ प्रश्न—इस जगत् मे जो ये अनेक तरह के दु ख दिखाई देते है, वे कहा से उत्पन्न होते है ?

उत्तर—ये दु ख उपाधियो से उत्पन्न होते है। जो अविद्वान् मदबुद्धि मनुष्य उपाधिया करते है वे वारवार दु ख भोगते है। अतएव दु ख का उत्पत्ति-कारण जाननेवाले वुद्धिमान् मनुष्य को उपाधि नही करनी चाहिए।

१४. प्रश्न—वुद्धिमान् मनुष्य किस तरह ओघ (भवसागर) जन्म, जरा, शोक, परिदेव और दु ख को पार करते है ?

उत्तर—ऊपर, नीचे, चारो ओर और मध्य में जो कुछ भी दिखाई देता है, उसमें से तृष्णा, दृष्टि और विज्ञान (चित्तधारा) को हटा देनेवाला पुरुप ससार पर आश्रय नही रखता।

इस प्रचार चलनेवाला स्मृतिवान्, अप्रमत्त और विद्वान् भिक्षु ममत्व को छोडकर इसी लोक मे जन्म, जरा, शोक, परिदेव और दु ख का त्याग कर देता है।

जो ब्राह्मण वेदपारग, अकिंचन और कामभव मे अनासक्त होगा, वही इस ससार-सागर को विश्वासपूर्वक पार कर सकेगा।

इस जगत् मे वही विद्वान् और वेदपारग मनुष्य है, वही भव और अभव मे आसक्ति का त्याग कर नकता है, वही निस्तृष्ण, निर्दुख और वासना-रहित है, और वही जन्म, जरा और मृत्यु को पार कर सकता है।

*

१५. प्रश्न—किस हेतु से प्रेरित हो ऋपि, क्षत्रिय, ब्राह्मण और अन्य मनुष्य इस जगत् मे देवताओ को उद्देश करके भिन्न-भिन्न यज्ञ करते है ?

उत्तर—ये सब इसलिए भिन्न-भिन्न यज्ञ करते है कि उनका पुनर्जन्म हो और वारवार जरा और मृत्यु के ग्रास वने।

१६. प्रश्न—यज्ञकर्म मे अप्रमादी रहकर क्या ये लोग जन्म और जरा को पार कर सकते है ?

उत्तर—ये लोग देवताओ की प्रार्थना करते है, स्तुति करते है, आशा प्रगट करते है, हवन करते है, और अपने लाभ के लिए कामसुख की याचना करते है। यज्ञ मे फँसे हुए ये भवलोभासक्त मनुष्य जन्म और जरा को कदापि पार नही कर सकते ?

१७. प्रश्न—तो फिर देवलोक और नरलोक मे कौन मनुष्य जन्म और जरा को पार कर सकता है ?

उत्तर—दुनिया की छोटी-वडी सभी वस्तुओ को प्रज्ञा से जानकर जिस मनुष्यने अपनी तमाम तृष्णाएँ नष्ट करदी है, जो शान्त, वीतधूम, रागादि-विरत और आशा-रहित है, वही जन्म और जरा को पार कर सकता है।

१८. प्रश्न—राग और दोष कहा से उत्पन्न होते है ? आरति, रति और हर्ष कहा से पैदा होते है ?

मन मे वितर्क कहा से होता है, जिससे यह मन उस पतग के समान मँडराता रहता है, जिसे बालक इधर-उधर उडाया करते हैं ?

उत्तर—यही आत्मा राग और दोप का निदान है। इसीसे अरति, रति और हर्ष उत्पन्न होते हैं। इसीसे मन मे वितर्क उत्पन्न होता है। यह उस पतग के समान है जिसे अबोध बालक इधर-उधर उडाया करते हैं। ये राग आदि स्नेह से आत्मा मे न्यग्रोध (बरगद) के स्कन्ध के समान उत्पन्न होते है और कामो मे बारबार 'मालू' नामक लता की भाति लपटते रहते है।

जो इनका निदान जानते है, वे आनन्द-लाभ करते है, और इस ससार-समुद्र को, जो अत्यन्त दुस्तर है, पार करके निर्वाण प्राप्त कर लेते है, और उनका पुनर्जन्म नही होता ।

*

१९ प्रश्न—(१) श्रेष्ठ धन कौन-सा है ?
(२) सुचिर सुख देनेवाला कौन है ;
(३) जगत् मे अत्यन्त स्वादिष्ट कौन पदार्थ है ?
(४) किस प्रकार का जीवन व्यतीत करनेवाला श्रेष्ठ पुरुष है ?

उत्तर—(१) श्रद्धा ही श्रेष्ठ धन है।
(२) धर्म ही सुचिर सुख देनेवाला है।
(३) सत्य ही ससार मे अत्यन्त स्वादिष्ट पदार्थ है।

(४) प्रज्ञा से जीवन-निर्वाह करनेवाला पुरुष ही ससार में श्रेष्ठ है।

२०. प्रश्न—(१) ओघ को कैसे पार कर सकते हैं?

(२) मृत्यु-महोदधि के उस पार किसके सहारे जा सकते हैं?

(३) दुःख का अन्त किससे कर सकते हैं?

(४) परिशुद्धि किससे होती है?

उत्तर—(१) श्रद्धा से ओघ को पार कर सकते हैं।

(२) अप्रमाद के सहारे मृत्यु महोदधि के उस पार जा सकते हैं।

(३) वीर्य (उद्योग) से दुःख का अन्त हो सकता है।

(४) और, प्रज्ञा से परिशुद्धि प्राप्त हो सकती है।

२१. प्रश्न—(१) प्रज्ञा किससे प्राप्त होती है?

(२) धन किससे मिलता है?

(३) कीर्ति किससे प्राप्त होती है?

(४) किस प्रकार इस लोक से परलोक पहुँचकर मनुष्य शोक नही करता?

उत्तर—(१) श्रद्धावान् प्रमाद-विरहित कुशल पुरुष निर्वाण की प्राप्ति के लिए आर्हत धर्म की परिसेवा (उपासना) से प्रज्ञा प्राप्त करता है।

(२) प्रत्युपकारी सहनशील पुरुष अप्रमाद के द्वारा विपुल धन प्राप्त करता है।

(३) सत्व से वह कीर्त्ति-लाभ करता है ।
(४) जिस गृहस्थ मे सत्य, धर्म, धृति और त्याग ये चार धर्म होते है, वही इस लोक से परलोक मे जाकर शोक नही करता ।

२२. प्रश्न—(१) किन गुणो के प्राप्त करने से मनुष्य भिक्षु होता है ?
(२) भिक्षु सुशान्त कैसे होता है ?
(३) दान्त किसे कहते है ?
(४) बुद्ध के क्या लक्षण है ?

उत्तर—(१) जो स्वय अपने तैयार किये हुए मार्ग पर परिनिर्वाण प्राप्त करता है, जिसे कोई शका नही रहती, जो शाश्वत दृष्टि और उच्छेद-दृष्टि का त्याग करके कृतकृत्य हो जाता है और पुनर्जन्म का क्षय कर देता है, वही भिक्षु है ।
(२) जो हर जगह उपेक्षायुक्त और स्मृतिमान् होकर इस अखिल जगत् मे किसी की भी हिसा नही करता, जो उत्तीर्ण और विमुक्त हो गया है, और जिसमे न राग रहा है न द्वेष, वही सुशान्त है ।
(३) इस अखिल जगत् मे जिसकी इद्रिया बाहर से तथा भीतर से वश मे होगई है, और जो भावितात्मा पुरुष उत्तम लोको

को जानकर मृत्यु की प्रतीक्षा करता है, वही दात है।

(४) समस्त विकल्प, ससार तथा जन्म-मरण को जानकर और विगतरज, निष्पाप एव विशुद्ध होकर जो जन्मक्षय का लाभ करता है, उसे बुद्ध कहते है।

*

२३. प्रश्न—(१) मनुष्य किन गुणो की प्राप्ति से ब्राह्मण होता है ?

(२) मनुष्य श्रमण कैसे होता है ?

(३) स्नातक के क्या लक्षण है ?

(४) नाग किसे कहते है ?

उत्तर—(१) जो मनुष्य समस्त पापो को हृदय से निकाल बाहर कर देता है, जो विमल, समाहित और स्थितात्मा होकर ससार-सागर को लाघ जाता है, जो 'केवली' और अनाश्रित होता है, उसे ब्राह्मण कहते है।

(२) पुण्य और पाप को त्यागकर जो पुरुष शात हो गया है, इहलोक और परलोक दोनो को जानकर जो विगतरज हो गया है, और जो जन्म तथा मरण के उस पार चला गया है, उसे श्रमण कहते है।

(३) जो समस्त जगत् मे बाहर और भीतर से तमाम पापो को पखारकर विकल्पबद्ध

देवताओ और मनुष्यो के बीच विकल्प को प्राप्त नही होता, उसे **स्नातक** कहते है।

(४) जो इस जगत् में एक भी पाप नही करता, और जो सभी सयोगो और बधनो को तोडकर कही भी बद्ध नही होता, उस पुरुष को इन गुणो के कारण **'नाग'** कहते है।

*

२९. प्रश्न—(१) **क्षेत्रजिन** किसे कहते है ?

(२) मनुष्य **कुशल** कैसे होता है ?

(३) **पंडित** के क्या लक्षण है ?

(४) **मुनि** किसे कहते है ?

उत्तर—(१) दिव्य, मानवी और ब्रह्मक्षेत्र—इन तीनो क्षेत्रो को जानकर जो तीनो के मूल बधन से मुक्त हो गया है, उसे **क्षेत्रजिन** कहते है।

(२) दिव्य, मानवी और ब्रह्मकोश—इन तीनो कोशो को जानकर जो तीनो के बधन से मुक्त हो गया है, उसे **कुशल** कहते है।

(३) आध्यात्मिक (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन) और बाह्य आयतनो (रूप, शब्द, गध, रस, स्पर्श, धर्म) को जानकर जो विशुद्धप्रज्ञ मनुष्य पाप और पुण्य के उस पार चला गया है उसे **पंडित** कहते है।

(४) अखिल लोक मे अध्यात्मविषयक और बाह्यविषयक तथा साधुओ और असाधुओं का धर्म जानकर जो आसक्ति के उस पार चला गया है, उसे **मुनि** कहते हैं। उसकी पूजा मनुष्य क्या देवता भी करते हैं।

*

२५. प्रश्न—(१) किन गुणो की प्राप्ति से मनुष्य **वेदपारग** कहलाता है ?

(२) मनुष्य **अनुविदित** कैसे होता है ?

(३) **वीर्यवान्** के क्या लक्षण हैं ?

(४) मनुष्य **आजन्य** कैसे होता है ?

उत्तर—(१) श्रमण और ब्राह्मणो के जितने वेद हैं उन सब को जानकर और उन्हे पार करके जो समस्त वेदनाओ के विषय मे वीतराग हो जाता है, वह **वेदपारग** है।

(२) भीतर और बाहर से रोगो का मूल यह ससार और नामरूप है, अत सर्व रोगो के मूल बधन से जो मुक्त हो जाता है उसे **अनुविदित** कहते हैं।

(३) जो इस लोक मे समस्त पापो से विरत हो गया और जिसने निरय-दु ख को पार कर लिया है, वह **वीर्यवान्** है, इन गुणो के कारण ही उसे **वीर्यवान्**, **प्रधानवान्** (प्रयत्नवान्) और **धीर** कहते हैं।

(४) भीतर और बाहर के समस्त सगकारणो को तोडकर जो सभी प्रकार की आसक्ति के वधन से मुक्त हो गया है उसे, इन गुणो के कारण, आजन्य कहते है ।

*

२६. प्रश्न—(१) किन गुणो को प्राप्त करके मनुष्य श्रोत्रिय होता है ?

(२) मनुष्य आर्य किन गुणो से होता है ?

(३) मनुष्य आचरणवान् कैसे होता है ?

(४) परिव्राजक किसे कहते है ?

उत्तर—(१) जितने भी निंदित और अनिंदित धर्म है उन सब को सुनकर और जानकर जो मनुष्य उनपर विजय प्राप्त करके नि शक, विमुक्त और सर्वथा निर्दु ख हो जाता है, उसे श्रोत्रिय कहते है ।

(२) जो विद्वान् मनुष्य आस्रवो और आलयो का उच्छेद करके गर्भवास की जड़ काट डालता है, और जो त्रिविध (काम, रूप और अरूप) पकमय सज्ञा को लाघकर विकल्प को प्राप्त नही होता, वह आर्य है ।

(३) जिसने आचरण मे पूर्णत्व प्राप्त कर लिया है, जिसे कुशल धर्मो का पूर्णज्ञान है, और जो कही भी बद्ध नही होता, जो विमुक्त है और जिसमें प्रत्याघात-

बुद्धि का सर्वथा अभाव है,वह आचरण-
वान् है ।

(४) ऊपर, नीचे और चारो ओर अथवा मध्य मे जितने भी दु खकारक कर्म है, उन्हे त्यागकर जो विचारपूर्वक वर्तता है, जिसने माया, मान, क्रोध और नामरूप को नष्ट कर दिया है उस पूर्णत्वप्राप्त पुरुप को परिव्राजक कहते है ।

*

२७ प्रश्न—कलह और विवाद तथा परिदेव, शोक और मत्सर कहा से उत्पन्न होते है ? और अहकार, अतिमान, तथा कलक का उत्पत्ति-स्थान क्या है ?

उत्तर—कलह और विवाद तथा परिदेव, शोक और मत्सर एव अहकार, अतिमान तथा कलक का उत्पत्ति-स्थान प्रियवस्तुएँ है ।

२८. प्रश्न—(१) इस जगत् मे वस्तुएँ प्रिय कैसे होती है ?
(२) यह लोभ किससे पैदा होता है ?
(३) लोगो के लडाई-झगडो की जड यह आशा और निष्ठा किससे उत्पन्न होती है ?

उत्तर—(१) इस जगत् मे राग (छद) के कारण वस्तुएँ प्रिय होती है ।
(२) राग की ही बदौलत यह लोभ पैदा होता है ।
(३) यह राग ही तमाम लडाई-झगडो की जड़ आशा और निष्ठा का जनक है ।

२९. प्रश्न—(१) जगत् मे राग कहा से पैदा होता है ?

(२) योजनाएँ कहा से उत्पन्न होती है ?

(३) कोध, लुच्चाई, कुशंका और दूसरे दोष कहा से पैदा होते है ?

उत्तर—(१) जगत् मे जिन्हे सुख और दु ख कहते हैं उन्हीसे राग पैदा होता है।

(२) रूपो मे हानि और लाभ देखकर जगत् मे यह मनुष्य योजनाएँ बनाया करता है।

(३) क्रोध, लुच्चाई, कुशका और दूसरे दोष भी सुख-दु ख के ही कारण उत्पन्न होते हैं ।

३०. प्रश्न—(१) सुख और दुःख होने का क्या कारण है?

(२) किन वस्तुओ के नष्ट होजाने से सुख-दु ख उत्पन्न नही होते ?

(३) लाभ और हानि का उत्पत्ति-स्थान क्या है ?

उत्तर—(१) सुख और दु ख का कारण स्पर्श है । स्पर्श से ही ये सुख-दु ख पैदा होते हैं ?

(३) स्पर्श न हो तो ये भी पैदा न हो।

(४) लाभ और हानि का भी उत्पत्ति-स्थान यह स्पर्श ही है।

३१. प्रश्न—(१) जगत् मे स्पर्श कहा से पैदा होता है ?

(२) परिग्रह किससे उत्पन्न होता है ?

(३) और, किसके नाश से यह स्पर्श उत्पन्न नही होता ?

उत्तर—(१) नाम और रूप के आश्रय से स्पर्श पैदा होता है।

(२) इच्छा के कारण परिग्रह उत्पन्न होता है। इच्छा यदि नष्ट हो जाय, तो फिर ममत्व न रहे।

(३) रूप-विचार नष्ट हो जाने से स्पर्श उत्पन्न नही होता।

३२. प्रश्न—(१) रूप-विचार किन गुणो से युक्त होने से नष्ट होता है ?

(२) सुख और दुःख का नाशक क्या है ?

(३) इनका कैसे नाश होता है ?

उत्तर—इन प्रश्नो का एक ही उत्तर है। जो सज्ञा* का विचार नही करता, अथवा असज्ञा का भी विचार नही करता, जो असज्ञी भी नही, और रूप-सज्ञी भी नही, उसका रूपविचार नष्ट हो जाता है। कारण यह है कि प्रपच की कल्पना इस सज्ञा से ही पैदा होती है।

३३. प्रश्न—(१) मुनि के क्या लक्षण है ?

(२) केवली किसे कहते है ?

(३) मनुष्य बुद्ध कैसे होता है ?

उत्तर—(१) जो पूर्वजन्मो को तथा स्वर्ग और नरक को जानता है, जिसका जन्मक्षय हो गया

---

* इन्द्रिय और विषय के एकसाथ मिलने पर, अनुकूल-प्रतिकूल वेदना के बाद 'यह अमुक विषय है' इस प्रकार का जो ज्ञान होता है उसे सज्ञा कहते है।

है, और जो अभिज्ञा-तत्पर है, वही मुनि है।

(२) रागो से जो सर्वथा मुक्त है, जो चित्त की विशुद्धि को जानता है, जिसका जन्म-मरण नष्ट और ब्रह्मचर्य पूर्ण हो गया है, उसे केवली कहते है।

(३) जिसने समस्त धर्मो को पार कर लिया है, उसे बुद्ध कहते है।

---

१. अ. नि. (३: ३: ६) २—१७. सु. नि. (पारायण वग्ग) १८—१९. बुद्धदेव (ना. प्र. का.) २०—२१ सु. नि. २२—२६. सु. नि. (सभियसुत्त) २७—३२. सु नि. (कलहविवाद सुत्त) ३३. म नि (ब्रह्मायु सुत्तत)

अंतिम उपदेश

१ भिक्षुओ । जहातक तुम लोग वारवार एकत्र होकर सघ का कार्य करते रहोगे, जबतक तुम मे ऐक्य रहेगा, ऐक्य से तुम सघ के सब कृत्य करते रहोगे, जहातक मघ के किसी नियम का भग नही करोगे, जहातक तुम अपने सघ के वृद्ध भिक्षुओ को मान देते रहोगे, जहातक तुम अपनी तृष्णा की अधीनता स्वीकार न करोगे, जहातक तुम एकान्तवास मे आनद मानोगे, और जबतक तुम इस बात की चिंता रखोगे कि तुम्हारे सब साथी सुखी रहे, तबतक तुम्हारी उत्तरोत्तर उन्नति ही होती जायगी, अवनति नही।

२. भिक्षुओ । अभ्युन्नति के ये सात नियम मै बतलाये देता हूँ, इन्हे ध्यानपूर्वक सुनो —

(१) गृहसबधी निजी काम मे आनद न मानना,
(२) व्यर्थ का बकवाद करने मे आनद न मानना,
(३) निद्रा मे समय बिताने मे आनद न मानना;
(४) भीडभाड पसद करनेवाले भिक्षुओ के साथ समय बिताने मे आनद न मानना,
(५) दुर्वासनाओ के वश न होना,
(६) दुष्टो की सगति मे न पडना,
(७) समाधि मे अल्प सफलता पाकर उसे बीच में ही न छोड देना ।

३. भिक्षुओ ! अभ्युन्नति के और भी सात नियम कहता हूँ, उन्हे सुनो —

(१) श्रद्धालु बने रहना,

(२) पाप-कर्म से लजाते रहना,

(३) लोकपवाद का भय रखना,

(४) विद्या का सचय करना,

(५) सत्कर्म करने मे उत्साह रखना,

(६) स्मृति को जाग्रत बनाये रखना;

(७) प्रज्ञावान् रहना ।

*

४. शीलभ्रष्ट मनुष्य की पाच प्रकार से हानि होती है —

(१) दुराचरण से उसकी सपत्ति का नाश होता है,

(२) उसकी अपकीर्ति फैलती है,

(३) किसी भी सभा मे उसका प्रभाव नही पडता,

(४) शाति से वह मृत्यु नही पाता,

(५) मरने के बाद वह दुर्गति को प्राप्त होता है ।

५ सदाचारी मनुष्य को, उसके सदाचरण के कारण, यह पाच प्रकार का लाभ होता है —

(१) सदाचरण से उसकी सपत्ति की वृद्धि होती है,

(२) लोक मे उसकी कीर्ति बढती है,

(३) हरेक सभा मे उसका प्रभाव पडता है,

(४) शाति से वह मृत्यु पाता है,

(५) मरने के बाद वह सुगति को प्राप्त होता है ।

*

६. अब तुम लोग अपने को ही अपना अवलम्बन बनाओ। इस ससार-समुद्र मे अपने मन को ही द्वीप बनाओ, धर्म को अपना द्वीप बनाओ। अपनी ही आत्मा की शरण मे जाओ, और धर्म की शरण मे जाओ।

जो पुरुष मैत्री, मुदिता, करुणा और उपेक्षा इन चार स्मृत्यु-पस्थानो की भावना करता है, वह अपने लिए आत्मद्वीप बना लेता है, धर्मद्वीप बना लेता है। यही आत्मशरण है, यही धर्म-शरण है।

*

७. भिक्षुओ ! तुम्हारा ब्रह्मचर्य चिरस्थायी रहे, और यदि तुम्हे ऐसा अनुभव होता हो, कि तुम्हारे उस ब्रह्मचर्य के द्वारा बहुत-से लोगो का कल्याण हो, बहुत-से लोगो को सुख मिले, तो मेरे सिखाये हुए 'कुशल धर्म' का सम्यक् रीति से अध्ययन और उसकी शुद्ध भावना करो।

*

८. जो मनुष्य मेरे उपदेश के अनुसार सावधानी के साथ धर्म का आचरण करेगा, वह पुर्नजन्म से छुटकारा पा जायगा, उसका दु ख नष्ट हो जायगा।

*

९. मेरे परिनिर्वाण के पश्चात् मेरे शरीर की पूजा करने की माथापच्ची मे न पडना। मैने तुम्हे जो सन्मार्ग बताया है, उसके अनुसार चलने का प्रयत्न करना।

*

१०. तुम्हारे मन मे यह विचार आसकता है कि बुद्ध के देहावसान के बाद हमारा कोई शास्ता (शासनकर्त्ता) नही रहा, पर

मेरे न रहने के बाद मैंने तुम्हे जिस धर्म और विनय की शिक्षा दी है, वही तुम्हारा शास्ता होगा।

*

११. मैं तुमसे कहता हूँ कि सस्कार अर्थात् कृतवस्तु नाशवान् है, अत सावधानी के साथ जीवन के लक्ष्य का सपादन करो।

१—११ दी नि. (महापरिनिब्बाण सुत्त)

सूक्ति-कण

सूक्ति-कण

१. दूसरे की त्रुटियो या कृत्य और अकृत्य की खोज मे न रहो। तुम तो अपनी ही त्रुटियो और कृत्य-अकृत्यो पर विचार करो।

*

२. उस काम का करना अच्छा नही, जिसे करके पीछे पछताना पडे, और जिसका फल रोते-बिलखते भोगना पडे ।

*

३. उसी काम का करना ठीक है, जिसे करके पीछे पछताना न पडे, और जिसका फल मनुष्य प्रसन्नचित्त से ग्रहण करे।

*

४. पाप-कर्म दूध की तरह तुरत नही जम जाता, वह तो भस्म से ढकी हुई आग की तरह थोडा-थोड़ा जलकर मूढ मनुष्य का पीछा करता है ।

*

५. जैसे महान् पर्वत हवा के झकोरो से विकपित नही होता, वैसे ही बुद्धिमान् लोग किसी की निंदा और स्तुति से विचलित नही होते।

*

६. वही पुरुष शीलवान्, बुद्धिमान् ओर धार्मिक है, जो न अपने लिए और न दूसरे के लिए पुत्र, धन आदि की इच्छा करता है और जो अधर्म से अपनी समृद्धि नही चाहता ।

*

७. सहस्रो अनथक वाक्यो से वह एक सायक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शाति प्राप्त होती है।

सहस्रो अनर्थक गाथाओ से वह एक सार्थक गाथा श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शाति प्राप्त होती है।

*

८. जो अभिवादनशील और सदा वृद्धो की सेवा करनेवाले है, उनके ये चारो धर्म बढते है—आयु, वर्ण, सुख और वल।

*

९. एक दिन का सदाचारयुक्त और ज्ञानपूर्वक जीना सौ वर्ष के शीलरहित और असमाहित जीवन से अच्छा है।

*

१०. यह समझकर पाप की अवहेलना न करे कि 'वह मेरे पास नही आयेगा।' एक-एक बूद पानी से घडा भर जाता है। इसी तरह मूर्ख मनुष्य अगर थोडा-थोडा भी पाप सचय करता है, तो वह एक दिन पाप-समुद्र मे डूब जाता है।

*

११. जो शुद्ध, पवित्र और निर्दोष पुरुष को दोष लगाता है, उस मूर्ख को उसका पाप लौटकर लगता है, जैसे वायु के रुख फेंकी हुई धूल अपने ही ऊपर आ पडती है।

*

१२. मनुष्य स्वय ही अपना स्वामी है, दूसरा उसका स्वामी या सहायक हो सकता है ? अपने को जिसने भलीभाँति दमन कर लिया, वह सहज ही एक दुर्लभ सहायक प्राप्त कर लेता है।

*

१३. अनुचित और अहितकर कर्मो का करना आसान है। हितकर और शुभ कर्म परम दुष्कर है ।

*

१४. जो पहले प्रमाद मे था, और अब प्रमाद से निकल गया, वह इस लोक को मेघ-माला से उन्मुक्त चन्द्रमा की भाति प्रकाशित करता है।

*

१५. जो अपने किये हुए पापो को पुण्य से ढँक देता है, वह इस लोक को इस प्रकार प्रकाशित करता है, जैसे बादलो से उन्मुक्त चन्द्रमा ।

*

१६. जिसने धर्म छोड दिया है, जो झूठ बोलता है, और परलोक का मजाक उडाता है, उसके लिए कोई भी पाप अकरणीय नही ।

*

१७. श्रेष्ठ पुरुष का पाना कठिन है। वह हर जगह जन्म नही लेता। धन्य है वह सुख-सम्पन्न कुल, जहा ऐसा धीर पुरुष उत्पन्न होता है।

*

१८. विजय से वैर पैदा होता है, पराजित पुरुष दुखी होता है। जो जय और पराजय को छोड देता है, वही सुख की नींद सोता है।

*

१९. राग के समान कोई आग नही, द्वेष के समान कोई पाप नही। पचस्कधो (रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार और विज्ञान) के समान कोई दु ख नही, और शाति के समान कोई सुख नही।

*

२०. भूख सब से बडा रोग है; शरीर सब से बडा दु ख है—इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। यथार्थ मे, निर्वाण ही परमसुख है।

*

२१. आरोग्य परमलाभ है। सतोप परमधन है। विश्वास परमबधु है। और निर्वाण परमसुख है।

*

२२. सत्पुरुपो का दर्शन अच्छा है। सतो के साथ रहना सदा सुखकारक है। मूर्खों के अदर्शन (अलग रहने) से मनुष्य सचमुच सुखी रहता है।

*

२३. मूर्खों की सगति मे रहनेवाला मनुष्य चिरकालतक शोक-निमग्न रहता है। मूर्खो की सगति शत्रुओ की सगति की तरह सदा ही दु खदायक होती है। और धीर पुरुषो का सहवास अपने बधु-बाधवो के समागम के समान सुखदायी होता है।

*

२४. सच बोलना, क्रोध न करना और याचक को यथेच्छ दान देना—इन तीन बातो से मनुष्य देवताओ के निकट स्थान पाता है।

*

२५. यह पुरानी वात है, कुछ आज की नही कि, जो नही वोलता उसकी भी लोग निंदा करते है, और जो वहुत वोलता है उसे भी दोष लगाते है ! इसी तरह मितभाषी की भी निंदा करते है। ससार मे ऐसा कोई नही, जिसकी लोग निंदा न करे। विल्कुल ही निंदित या विल्कुल ही प्रशसित पुरुष न कभी हुआ, न होगा, और न आजकल है।

*

२६. काया के कोप से वच, काया पर दमन कर, काया के दुश्चरित को छोड, काया के सुचरित का आचरण कर।

*

२७. वाणी के कोप से वच, वाणी को सयत रख, वाणी के दुश्चरित को छोड, वाणी के सुचरित का आचरण कर।

*

२८. मन के कोप से वच, मन को वश मे कर, मन के दुश्चरित को छोड, मन के सुचरित का आचरण कर।

*

२९. राग के समान कोई आग नही, द्वेष के समान कोई अरिष्ट ग्रह नही, मोह के समान कोई जाल नही, और तृष्णा के समान कोई नदी नही।

*

३०. जैसे, सुनार चादी के मैल को दूर कर देता है, उसी तरह बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह अपने मलो (पापो) को प्रतिक्षण थोडा-थोडा दूर करता रहे।

*

३१. यह लोहे का मोरचा ही है जो लोहे को खा जाता है। इसी प्रकार पापी के पाप-कर्म ही उसे दुर्गति को पहुँचाते हैं।

*

३२. उपासना का मोरचा अनभ्यास है। मकान का मोरचा उसकी बेमरम्मती है। शरीर का मोरचा आलस्य है, और सरक्षक का मोरचा प्रमाद है।

*

३३. जो प्राणियो की हिंसा करता है, जो झूठ बोलता है, जो ससार मे न दी हुई चीज को उठा लेता है अर्थात् चोरी करता है, जो पराई स्त्री के साथ सहवास करता है, जो शराब पीता है, वह मनुष्य इस लोक मे अपनी जड आप ही खोदता है।

*

३४ दूसरे का दोष देखना आसान है, किन्तु अपना दोष देखना मुश्किल है। लोग दूसरो के दोषो को भुस के समान फटकते फिरते हैं, किंतु अपने दोषो को इस तरह छिपाते हैं जैसे चतुर जुआरी हरानेवाले पासे को छिपा लेता है।

*

३५. जो दूसरो के दोषो को ही सदा देखा करता है, और हमेशा हाय-हाय करता रहता है, उसकी वासनाएँ बढती ही जाती हैं, और वह उनका नाश नही कर सकता।

*

३६. बहुत बोलने से कोई पडित नही होता। जो क्षमाशील, वैर-रहित और अभय होता है वही पडित कहा जाता है।

*

३७. वह धर्मधर नही जो बहुत बोलता है। वही धर्मधर है, और वही धर्मविषयो मे अप्रमादी है, जो पढा चाहे थोडा हो पर धर्म का ठीक-ठीक आचरण करता है।

*

३८. यदि किसी के सिर के बाल पक जायँ, तो इससे वह स्थविर या बड़ा नही हो जाता। उसकी उम्र भले ही पक गई हो किंतु वह व्यर्थ ही वृद्ध कहा जाता है।

*

३९. बडा असल में वही है, जिसमे सत्य, धर्म, अहिंसा, सयम और दम है, जो मल से रहित और धीर है।

*

४०. जो पुरुष ईर्ष्यालु, मात्सर्ययुक्त और शठ है, वह बहुत बोलने या सुदर रगरूप के कारण साधु नही हो सकता।

*

४१. साधु वही है, जिसके दोष जडमूल से नष्ट हो गये है। जो विगतदोष और मेधावी है, वही साधु है।

*

४२. अनियमित और मिथ्याभाषी मनुष्य मूड मुडानेमात्र से ही भिक्षु नही हो जाता। क्या ऐसा मनुष्य भिक्षु हो सकता है जो वासना और लोभ से युक्त हो?

*

४३. वही असल मे भिक्षु है, जिसने छोटे-बड़े सब पाप त्याग दिये है। जिसके पाप शमित होगये है, वही श्रमण कहा जाता है।

*

४४. भिक्षा मागनेमात्र से कोई भिक्षु नही होता। भिक्षु वही होता है, जो धर्मानुकूल आचरण करता है।

*

४५. जो पाप और पुण्य से ऊँचा उठकर ब्रह्मचारी बन गया है, जो लोक मे धर्म के साथ विचरता है, उसीको भिक्षु कहना चाहिए।

*

४६. अज्ञानी और मूढ मनुष्य केवल मौन रहने से मुनि नही हो जाता। वही मनुष्य मुनि है, जो तराजू की तरह ठीकठीक जाच करके सुव्रतो का ग्रहण और पापो का त्याग करता है। जो दोनो लोको का मनन करता है वही सच्चा मुनि है।

*

४७ जो प्राणियो की हिंसा करता है वह आर्य नही। समस्त प्राणियो के साथ जो अहिंसा का बर्ताव करता है वही आर्य है।

*

४८. यदि थोडा सुख छोड देने से विपुल सुख मिलता हो तो बुद्धिमान् पुरुष विपुल सुख का खयाल करके उस थोडे से सुख को छोड़ दे।

*

४९. दूसरे को दु ख देकर जो अपना सुख चाहता है, वह वैर के जाल मे फँसकर उससे छूट नही सकता।

*

५०. ऐसे ही उन्मत्त और प्रमत्त लोगो के आस्रव (चित्त के मल) बढ़ते है, जो कर्तव्य को छोड देते है और अकर्तव्य को करते है।

*

५१. जो नित्य शरीर की अनित्य गति को विचारते हैं, जो अकर्तव्य से दूर रहते और कर्तव्य कृत्य को करते हैं, उन ज्ञानी सत्पुरुषों के आस्रव अस्त हो जाते हैं।

*

५२- श्रद्धावान्, शीलवान्, यशस्वी और धनी पुरुष जिस-जिस देश में जाता है, वहा वह पूजा जाता है।

*

५३. हिमालय के धवल शिखरो के समान सतजन दूर से ही प्रकाशते हैं। और, असत लोग इस तरह अदृष्ट रहते हैं, जैसे रात मे छोड़ा हुआ बाण।

*

५४. काषाय वस्त्र पहननेवाले बहुत-से पापी और असयमी मिलेंगे। ये सब अपने पाप-कर्म के द्वार से नरकलोक को जायँगे।

*

५५. असयमी और दुराचारी मनुष्य राष्ट्र का अन्न व्यर्थ खावे इससे तो आग मे गरम किया हुआ लोहे का लाल गोला खा जाय वह अच्छा।

*

५६. परस्त्रीगमन करने से अपुण्य-लाभ, बुरी गति, भय और थोडी देर का सुख, यही मिलता है। इसलिए मनुष्य को परस्त्रीगमन नही करना चाहिए।

*

५७. जैसे असावधानी से पकडा हुआ कुश हाथ को काट

देता है, उसी तरह असावधानी के साथ सन्यास ग्रहण करने से नरक की प्राप्ति होती है।

*

५८ दुष्कृत (पाप) का न करना ही श्रेयस्कर है, क्योकि दुष्कृत करनेवाले को पीछे पछताना पड़ता है। सुकृत का करना ही श्रेष्ठ है, जिससे मनुष्य को अनुताप न करना पडे।

*

५९. मुनि को गाव मे इस तरह विचरना चाहिए, जिस तरह भौरा फूल के रग और सुगध को न बिगाडता हुआ उसके रस को लेकर चल देता है।

*

६०. कोई भी सुगध चाहे वह चदन की हो चाहे तगर की या चमेली की, वायु से उलटी ओर नही जाती। किंतु सत्पुरुषो की सुगध वायु से उलटी ओर भी जाती है। सत्पुरुषो की सुगध सभी दिशाओ को सुवासित करती है।

*

६१. चदन या तगर, कमल या जूही इन सब की सुगध से सदाचार की सुगध श्रेष्ठ है।

*

६२. तगर और चदन की जो गध है वह अल्पमात्र है, और जो यह सदाचारियो की उत्तम गध है, वह देवताओ तक पहुँचती है।

*

६३. चाहे कितनी ही धर्म-सहिताओ का पाठ करे, किंतु प्रमादी मनुष्य उन सहिताओ के अनुसार आचरण करनेवाला

नही होता, अत वह श्रमण अर्थात् साधु नही हो सकता। वह तो उस ग्वाले के सम्मान है जो दूसरो की गायो को गिनता रहता है।

*

६४. जो पुरुप राग-द्वेषादि कषायो (मलो) को विना छोड ही काषाय (गेरुआ) वस्त्र धारण कर लेता है, और जिसमें न सयम है न सत्य, वह काषाय वस्त्र धारण करने का अधिकारी नही।

*

६५. जिसने कपायो (मलो) का त्याग कर दिया है, जो सदाचारी, सयमी और सत्यवान् हैं वही काषाय वस्त्र धारण कर सकता है।

*

६६. जिस प्रकार कलछी दाल-तरकारी के स्वाद को नही समझ सकती, उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य सारी जिदगी पंडितो की सेवा मे रहकर भी धर्म और ज्ञान का रस प्राप्त नही करसकता।

*

६७. जिस प्रकार जीभ दाल-तरकारी को चखते ही स्वाद पहचान लेती है, उसी प्रकार विज्ञपुरुष पडितो की सेवा मे मुहूर्त मात्र रहकर भी धर्म और ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।

*

६८ जबतक पाप का परिपाक नहीं होता, तभीतक मूर्ख मनुष्य को वह मधु-सा मीठा लगता है। किन्तु जब पाप-कर्म के फल लगने लगते हे, तव उस मूर्ख को भारी क्लेश होता है।

*

६९ जिनके पास कोई मालमता नही, जो सचय करना नही जानते, जिनका भोजन नियत है, जिन्हे जगत् शून्यता-स्वरूप दिखाई देता है, और जिन्होने निर्वाणपद प्राप्त कर लिया है, उनकी गति उसी प्रकार मालूम नही हो सकती, जिस प्रकार कि आकाश मे पक्षियो की गति ।

*

७०. सौ वर्ष के आलसी और हीनवीर्य जीवन की अपेक्षा एक दिन का दृढ कर्मण्यता का जीवन कही अच्छा है ।

*

७१ न आकाश मे, न समुद्र मे, न पर्वतो की खोह मे कोई ऐसा ठौर है, जहा पापी प्राणी अपने किये हुए पापकर्मो से त्राण पा सके ।

*

७२ बुढापेतक सदाचार का पालन करना सुखकर है । स्थिर श्रद्धा सुखकर है । प्रज्ञा का लाभ सुखकर है । और पापकर्मो का न करना सुखकर है ।

*

७३. जिसने हाथ, पैर और वाणी को सयम मे रखा है, वही सर्वोत्तम सयमी है । मै उसीको भिक्षु कहता हूँ, जिसकी अतरात्मा आनद-रत है, जो सयत है, एकातसेवी है और सतुष्ट है ।

*

७४. जिस भिक्षु की वाणी अपने वश मे है, और जो थोडा बोलता है, जो उद्धत नही है, और धर्म को प्रकाश मे लाता है, उसीका भाषण मधुर होता है ।

*

७५. न तो अपने लाभ का तिरस्कार करे, और न दूसरो के लाभ की स्पृहा ।

*

७६. इस नामरूपात्मक जगत् मे जिसे बिल्कुल ही ममता नही, और जो किसी वस्तु के न मिलने पर उसके लिए शोक नही करता, वही सच्चा भिक्षु है ।

*

७७. ध्यान मे रत रहो, प्रमाद मत करो । तुम्हारा चित्त भोगो के चक्कर मे न पडे । प्रमाद के कारण तुम्हे लोहे का लाल-लाल गोला न निगलना पडे । और दुःख की आग से जलते समय तुम्हे यह कहकर क्रन्दन न करना पडे कि 'हाय यह दुःख है' ।

*

७८. जैसे जूही की लता कुम्हलाये हुए फूलो का त्याग कर देती है, वैसे ही तुम राग और द्वेष को छोड दो ।

*

७९. अपने को अपने आप उठा, अपनी आप परीक्षा कर । इस प्रकार तू अपनी आप रक्षा करता हुआ विचारशील हो सुख-पूर्वक इस लोक मे विहार करेगा ।

*

८०. मनुष्य आप ही अपना स्वामी है, अपनी गति अपनेतक ही है । इसलिए तू अपने को सयम मे रख, जैसे बनिया अपने घोडे को अपने काबू मे रखता है ।

*

८१. धर्मपूर्वक माता-पिता का भरण-पोषण करे, धमपूवक व्यवहार और वाणिज्य करे। गृहस्थो को इस प्रकार आलस्य और प्रमाद छोडकर अपना धर्म-पालन करना चाहिए।

*

८२. दुख का समूल नाश करने के लिए ब्रह्मचर्य का व्रत-पालन अत्यत आवश्यक है।

*

८३. हस, क्रौच, मोर, हाथी और मृग ये सभी पशु-पक्षी सिंह से भय खाते हैं। कौन शरीर मे बडा है और कौन शरीर में छोटा, यह तुलना करना व्यर्थ है।

इसी प्रकार मनुष्यो मे भी बौने शरीर का होते हुए भी यदि कोई प्रज्ञावान् है, तो वही वास्तव मे बडा है। भारी भरकम शरीर के होते हुए भी मूर्ख मनुष्य को हम बडा नही कह सकते।

*

८४. ससर्ग होने से स्नेह उत्पन्न होता है। स्नेह से दुख होता है। यह स्नेह ही दोष है, ऐसा समझकर गेंडा के सीग की तरह एकाकी ही रहना चाहिए।

*

८५. देख, यह आसक्ति है, इसमे सुख थोडा है, आस्वाद कम है, और दुख अधिक है। सावधान! यह मछली फँसाने का आकड़ा है।

*

८६. जैसे कोई मनुष्य किसी प्रचड धार की नदी मे उतरकर तैर न सकने के कारण बह जाता है और दूसरो को पार नही

उतार सकता, वैसे ही जिस मनुष्यने धर्मज्ञान का सपादन नही किया, और विद्वानो के मुख से अर्थपूर्ण वचन नही सुने, जो स्वय ही अज्ञान और सशय मे डूवा हुआ है, वह दूसरो का किस प्रकार समाधान कर सकता है ?

८७. समाधान तो वह ज्ञानी पुरुष ही कर सकता है, जो विद्वान्, सयतात्मा, वहुश्रुत तथा अप्रकम्प्य होता है, और जिसनें श्रोतावधान के द्वारा निर्वाणज्ञान का सपादन किया है।

*

८८. तू तो निष्काम निर्वाण का चिंतन कर और यह अहकार की वासना छोड दे। अहकार का त्याग करने पर ही तुझे सुचिर शाति मिलेगी।

*

८९. जो निंदनीय मनुष्य की प्रशसा अथवा प्रशसनीय पुरुष की निंदा करता है, वह अपने ही मुख से अपनी हानि करता है, और इस हानि के कारण उसे सुख प्राप्त नही होता।

*

९०. जुए मे धन गँवाने मे जो हानि होती है वह कम है, किंतु सत्पुरुषो के सम्वन्ध मे अपना मन कलुषित करना तो सर्वस्व-हानि से भी वढकर आत्महानि है।

*

९१. मूर्ख मनुष्य दुर्वचन वोलकर खुद ही अपना नाश करते हैं।

*

९२. जो छिछला या छिछोरा होता है वही ज्यादा आवाज करता है, पर जो गभीर होता है, वह शात रहता है। मूर्ख अधभरे

घड़े की तरह शोर मचाते है, पर प्रज्ञावान् गभीर मनुष्य सरोवर की भाति सदा शात रहते है ।

*

९३. जो सयतात्मा पुरुष सब कुछ जानते हुए भी बोलते नही है, वे ही मुनि मौनव्रत के योग्य है ।

*

९४. यह अविद्या ही महान् मोह है, जिसके कारण मनुष्य चिरकाल से ससार मे पड़ा है । किंतु जो विद्यालाभी प्राणी होता है, वह बारबार जन्म नही लेता ।

*

९५. जो भी दु ख पैदा होता है, वह सब सस्कारो से ही पैदा होता है, सस्कारो के निरोध से दु ख की उत्पत्ति असभव होजाती है।

*

९६. इस सारे प्रपच का मूल अहकार है । इसका जडमूल से नाश कर देना चाहिए । अहकार के समूल नाश से ही अत -करण मे रमनेवाली तृष्णाओ का अत हो सकता है ।

*

९७. 'अनात्मा मे आत्मा है,' ऐसा माननेवाले और नामरूप के बधन मे पडे हुए इन मूढ मनुष्यो की ओर तो देखो ! वे यह समझते है कि 'यही सत्य है !'

९८. वे जिस-जिस प्रकार की कल्पना करते है' उससे वह वस्तु भिन्न ही प्रकार की होती है, और उनकी कल्पना झूठी ठहरती है, क्योकि जो क्षणभगुर होता है वह नश्वर तो है ही ।

९९ पर आर्य लोग मानते है कि निर्वाण ही अविनश्वर है और वही सत्य है, और वे सत्यज्ञान के बलपर तृष्णारहित होकर निर्वाण-लाभ करते है।

*

१००. जिस प्रकार साप के फन से हम अपना पैर दूर रखते है, उसी प्रकार जो कामोपभोग से दूर रहता है वह स्मृतिमान् पुरुष इस विषभरी तृष्णा का त्याग करके निर्वाण-पथ की ओर अग्रसर होता है।

*

१०१. वासना ही जिसका उद्देश हो, और ससारीमुखो के वधन मे जो पडा हुआ हो, उसे छुडाना कठिन है, क्योकि जो आगे या पीछे की आशा रखता है, और अतीत या वर्तमान काल के कामोपभोग मे लुब्ध रहता है, उसे कौन छुडा सकता है ?

*

१०२. सोने-चादी-के लाखो-करोडो सिक्को को मै श्रेष्ठ धन नही कहता। उसमे तो भय-ही-भय है—राजा का, अग्नि का, जल का, चोर का, लुटेरे का और अपने सगे सवधियोतक का भय है।

१०३ श्रेष्ठ और अचचल तो मैं इन सात धनो को मानता हूँ—श्रद्धा, शील, लज्जा, लोक-भय, श्रुत, त्याग और प्रज्ञा। इस सप्तविध धन को कौन लूट सकता है, और कौन छीन सकता है ?

*

१०४. लोभ, द्वेष और मोह ये पाप के मूल है, अलोभ, अद्वेष और अमोह ये पुण्य के मूल है।

१०५. ये जो चद्र और सूर्य आकाश-मडल मे प्रकाशित हो रहे है, और ब्राह्मण जिन्हे नित्य स्तोत्रो के गान से रिझाते और पूजते है, उन चद्र-सूर्य की ओर जाने का मार्ग क्या ये ब्राह्मण बतला सकेंगे ?

जिन चद्र-सूर्य को ये ब्राह्मण प्रत्यक्ष देख सकते है, उनतक पहुँचने का मार्ग जब वे न जान ही सकते है, न बतला ही सकते है, तो उस ब्रह्मसायुज्यता के मार्ग का ये क्या उपदेश करेगे, जिसे न उन्होने ही कभी देखा है और न उनके आचार्योंने ही ? यदि ब्रह्मसायुज्यता के मार्ग का वे उपदेश करते है तो यह एक विचित्र ही बात है !

*

१०६. जो स्मृतिमान् मनुष्य अपने भोजन की मात्रा जानता है उसे अजीर्ण की तकलीफ नही होती। वह आयु का पालन करते-करते बहुत बरसो के बाद वृद्ध होता है।

*

१०७. कोई-कोई स्त्री तो पुरुष से भी श्रेष्ठ निकलती है। यदि वह बुद्धिमती, सुशीला और बडो का आदर करनेवाली तथा पतिव्रता हो तो उसे कौन दोष दे सकता है ? उसके गर्भ से जो पुत्र जन्म लेता है वह शूरवीर होता है। ऐसी सद्भाग्यवती स्त्रीके गर्भ से जन्म लेनेवाला पुत्र साम्राज्य चलाने की पात्रता रखता है।

*

१०८. कृपण के धन की कैसी बुरी गति होती है ! कृपण मनुष्य से उसके जीवन-काल मे किसी को भी सुख नही पहुँचता। उसका इकठ्ठा किया हुआ सारा धन अन्त मे राजा के खजाने मे

जाता है, या चोर लूट लेते है, अथवा उसके शत्रु उसे तिडी-बिडी कर देते है।

कृपण के धन की वैसी ही गति होती है, जैसी जगल के उस तालाव की, जिसका पानी किसी के काम नही आता, और वह वही-का-वही सूख जाता है।

*

१०९. जरा और मरण तो भारी-भारी पर्वतो से भी भयकर है! हाथी, घोडा, रथ और पैदल सैनिको की चतुरगिणी सेना से कही जरा और मृत्यु की पराजय हो सकती है? जरा और मृत्यु के घर यह भेदभाव नही कि यह ब्राह्मण है और यह चाण्डाल।

*

११०. सदाचार-रत मनुष्य इस लोक मे प्रशसा पाता है, और परलोक मे सद्गति।

*

१११. अपने हाथ से कोई अपराध हो गया हो तो उसके लिए पश्चात्ताप करना, और भविष्य मे फिर कभी वह अपराध न करना, यह आर्य गृहस्थ का कर्तव्य है।

*

११२. धर्म को जानकर जो मनुष्य वृद्धजनो का आदर-सत्कार करते है, उनके लिए इस लोक मे प्रशसा है और परलोक मे सुगति।

*

११३. भिक्षुओ! मै तुम्हारी सेवा न करूँ तो कौन करेगा? तुम्हारी यहा माता नही, पिता नही, जो तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा

करते। तुम एक दूसरे की सेवा न करोगे, तो फिर कौन करेगा ? जो रोगी की सेवा करता है वह मेरी ही सेवा करता है।

*

११४. लोभ के फंदे मे फँसा हुआ मनुष्य हिंसा भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्री-गमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, और दूसरो को भी वैसा ही करने के लिए प्रेरित करता है।

*

११५. तुम खुद अपनी आंख से देखो, कि यह धर्म अकुशल है, अत त्याज्य है, इसे हम ग्रहण करेगे तो हमारा अहित ही होगा। अकुशल धर्म का त्याग तुम अपनी प्रज्ञा से करो—श्रुत से या मत-परम्परा से नही, प्रामाण्य शास्त्रो की अनुकूलता से या तर्क के कारण नही, न्याय के हेतु से या अपने चिरचिंतित मत के अनुकूल होने से नही, और वक्ता के आकार अथवा उसके भव्यरूप से प्रभावित होकर भी नही।

*

११६. मुक्त पुरुष सर्वदा सुख की नीद सोता है। रागादि से रहित, नितान्त अनासक्त और निर्भय पुरुष आन्तरिक शान्ति मे विहार करता हुआ सदैव सुख की नीद सोता है।

*

११७ कटु वाक्य सुनकर हमे उन्हे मन मे न लाना चाहिए।

*

११८. हानि-लाभ को न देखकर सौ वर्ष जीने की अपेक्षा हानि-लाभ को देखकर एक दिन का जीना अच्छा है।

*

११९. जो परवश है वह सब दुःख है। सुख तो एक स्ववशता मे ही है।

*

१२०. मूर्ख तबतक नही समझता, जबतक कि वह पाप मे पचता नही। पाप मे जब वह पचने लगता है, तभी उसकी समझ मे आता है कि 'अरे! यह तो पाप-कर्म है।'

*

१२१ हत्या का फल हत्या है, निंदा का फल निंदा है और क्रोध का फल क्रोध। जो जैसा करता है, वैसा ही फल उसे मिलता है।

*

१२२. रग या रूप से मनुष्य सुज्ञेय नही होता। किसीको देखते ही उसपर विश्वास न कर लेना चाहिए। रूप और रग से कितने ही मनुष्य सयमी-से मालूम होते है।

१२३. ऐसे बने हुए मनुष्य मिट्टी के नकली कुण्ड की तरह या सोने से मढे ताबे के टुकडे की तरह होते है। ऊपर से सुन्दर, किन्तु भीतर से वे महान् अशुद्ध होते है।

*

१२४. तुझे इस बात का अभ्यास करना चाहिए, कि मेरे चित्त मे विकार नही आने पायगा, मुहँ से मै दुर्वचन नही निकालूगा, और द्वेषरहित हो मैत्रीभाव से इस ससार मे विचरण करूँगा।

*

१२५ तुम्हारे लिए दो ही कर्तव्य है—एक तो धर्म-प्रवचन का मनन और दूसरा आर्य तूष्णीभाव, अर्थात् उत्तम मौन।

*

१२६. उनके लिए अमृत का द्वार बन्द है, जो कानो के होते हुए भी श्रद्धा को छोड देते है।

*

१२७. जिन जीवो के तमाम आस्रव अर्थात् मल नष्ट हो जाते है, उन्हीको 'जिन' कहते है।

*

१२८. परमलाभ आरोग्य है, और परमसुख निर्वाण।

*

१२९ सत्य-प्राप्ति का उपकारी धर्म प्रयत्न है। मनुष्य प्रयत्न न करे, तो फिर सत्य की प्राप्ति कहा से हो ?

और, प्रयत्न का उपकारी धर्म उद्योग है। विना उद्योग के मनुष्य प्रयत्न नही कर सकता।

*

१३०. उच्चकुल मे जन्म लेने से लोभ थोडा ही नष्ट हो जाता है। उच्चकुल मे जन्म लेने से न द्वेष ही नष्ट होता है, न मोह ही।

१३१. उच्चकुल मे भले ही जन्म न लिया हो, किन्तु यदि मनुष्य धर्ममार्ग पर आरूढ होकर धर्म का ठीक-ठीक आचरण करता है, तो वह प्रशसनीय है, पूज्य है।

*

१३२ जो मनुष्य अपनी उच्चकुलीनता का अभिमान करता है, और दूसरो को नीची निगाह से देखता है, वह प्रव्रज्या ले लेने पर भी 'असत्पुरुष' ही कहलायगा।

१३३ यह वृक्षो की छाया है, यह शून्य गृह है। इसके नीचे बैठकर प्रमाद मत करो, ध्यान करो।

*

१३४. चाहे गृहस्थ हो चाहे सन्यासी, यदि वह मिथ्या प्रतिज्ञावाला है, तो वह मिथ्या प्रतिपत्ति (असत्य विश्वास) के कारण कुशलधर्म का आराधक नही हो सकता।

*

१३५. उलीचो, उलीचो, इस नाव को उलीचो, उलीचने से तुम्हारी यह नाव हलकी हो जायगी, और तभी जल्दी-जल्दी चलेगी। राग और द्वेष का छेदन करके ही तुम निर्वाणपद पा सकोगे।

*

१३६. काट डालो वासना के इस बीहड वन को। एक भी वृक्ष न रहने पाये। यह महाभ्यकर वन है। जब वन और उसमे उगनेवाली झाडियो को काट डालोगे, तभी तुम निर्वाणपद पाओगे।

*

१३७. आत्मस्नेह को इस तरह काटकर फेकदे, जिस तरह लोग शरद ऋतु के कुमुद को हाथ से तोड लेते है। शाति के मार्ग का आश्रय ले—यह बुद्ध-द्वारा उपदिष्ट मार्ग है।

*

१३८. बुद्ध के निर्दिष्ट मार्ग पर वही चल सकता है, जो मन, वचन और काया को पापो से बचाता है।

*

१३९ यह ब्रह्मचर्य न तो आदर-सत्कार प्राप्त करने के लिए है, न शील-सपत्ति प्राप्त करने के लिए—और न समाधि-सपत्ति

या प्रज्ञा प्राप्त करने के लिए है। यह ब्रह्मचर्य तो आत्यतिक चित्त-विमुक्ति अर्थात् निर्वाणपद प्राप्त करने के लिए है। आत्यंकिक चित्त-विमुक्ति ही ब्रह्मचर्य का सार है, और यही ब्रह्मचर्यव्रत का पर्यव-सान भी है।

*

१४०. जिस श्रद्धालु गृहस्थ मे सत्य, धर्म, धृति और त्याग ये चार गुण है, वह इस लोक से परलोक में जाकर शोक नही करता।

*

१४१. वही बात बोलनी चाहिए, जो अपनी आत्मा के विरुद्ध न हो, और जिससे किसीको दुख न पहुँचे। यही सुभाषित वाक्य है।

१४२. वही प्रिय बात बोलनी चाहिए, जो आनददायक हो, और ऐसा न हो कि दूसरे के लिए प्रिय बात बोलने मे पाप लगे।

१४३. मेरी वाणी सदा सत्य हो, यही सनातनधर्म है।

१४४. सतोने कहा है कि सुभाषित वाक्य ही उत्तम है, धर्म की बात कहना, अधर्म की न कहना, यह दूसरा सुभाषण है, प्रिय बोलना, अप्रिय न बोलना यह तीसरा सुभाषण है, सत्य बोलना, असत्य न बोलना, यह चौथा सुभाषण है।

*

१४५. भिक्षुओ! अब तुम लोग जाओ, घूमो, जनता के हित के लिए, जनता के सुख के लिए, देवताओ और मनुष्यो के कल्याण के लिए घूमो। कोई दो भिक्षु एक तरफ न जाना। तुम लोग उस धर्म का उपदेश करो जो आदि मे कल्याणकारी है, मध्य मे कल्याणकारी है और अत मे कल्याणकारी है।

१. ध. प. (पुप्फवग्गो). २—४ ध. प. (बालवग्गो) ५—६ ध प. (पण्डितवग्गो) ७—९ ध. प. (सहस्सवग्गो) १०—११ ध. प. (पापवग्गो) १२—१३. ध. प. (अत्तवग्गो) १४—१६. ध. प. (लोकवग्गो) १७ ध. प. (बुद्धवग्गो) १८—२३. ध. प. (सुखवग्गो) २४—२८. ध प. (कोधवग्गो) २९—३५. ध. प. (मलवग्गो) ३६—४७. ध. प. (धम्मट्ठवग्गो) ४८—५३ ध प. (पकिण्णक वग्गो) ५४—५८. ध. प. (निरयवग्गो). ५९—६२. ध. प (पुप्फवग्गो) ६३—६५. ध. प. (यमकवग्गो) ६६ --६८. ध. प (बालवग्गो) ६९. ध प. (अर्हन्तवग्गो) ७०. ध. प. (सहस्सवग्गो) ७१. ध प. (पापवग्गो) ७२. ध. प (नागवग्गो) ७३—८०. ध प (भिक्खुवग्गो) ८१. सु. नि. (धम्मिक सुत्त) ८२. सु नि. ८३ निदानवग्गो (भिक्खुसंयुत्त) ८४. सु. नि (खग्गविषाण सुत्त) ८५. सु नि (खग्गविषाण सुत्त) ८६—८७. सु नि. (नावा सुत्त). ८८—९१. सु. नि. (कोकालिक सुत्त) ९२—९३. सु. नि (नालक सुत्त) ९४—९५. सु. नि. (द्वयतानुपस्सना सुत्त) ९६ सु नि (तुवट्टक सुत्त) ९७—९९ सु नि (द्वयतानुपस्सना सुत्त) १०० सु नि (काम सुत्त) १०१ सु नि (गुहट्ठक सुत्त) १०२ सु नि (दुट्ठट्ठक सुत्त) १०१ अ नि (धन सुत्त) १०४ अ नि (कालाम सुत्त) १०५ दी. नि (तेविज्ज सुत्त) १०६—११० बु लो सा स (कोसल संयुत्त) १११ दी नि (सामञ्ञफल सुत्त) ११२ बु च (अनाथपिंडक-दीक्षा) ११३ बु च (पृष्ठ ३३८) ११४—११५ अ नि (३ ७ ५) ११६ अ नि (३ ४ ५) ११८ बु च (सुन्दरी सुत्त) ११८ थेरी अवदान, द्वितीयभाणवार ११९ बु च (विसाख सुत्त)

१२०—१२१. खु च (सगाय सुत्त) १२२—१२३ स नि (३: २: १) १२४ म नि (ककचूपमसुत्तन्त) १२५—१२७ म नि. (पासरासि सुत्तन्त) १२८ म नि (मागण्डिय सुत्तत) १२६ म नि (चकि सुत्त) १३०—१३२ म नि (सप्पुरिस धम्म सुत्तंत) १३३ स नि. (आनज सप्पाव सुत्तन्त) १३४ स नि (सुभ सुत्तन्त) १३५ ध प (भिक्खुवग्गो) १३६—१३८ ध प. (मग्गवग्गो) १३६ म नि (महासारोपम सुत्त) १४० सु नि (आलवक सुत्त) १४१—१४४ सु नि (सुभासित सुत्त) १४५ स नि (४—१—४)

कोश

अकुशल = पाप, दुष्कृत्य

अकप्य = स्थिर

अनागामी = कामवासना और क्रोध इन दो सयोजनो का सपूर्णतया उच्छेद करनेवाला श्रमण, मज्झिमनिकाय के सगीति-परियाय सुत्त मे अनागामीके पाच प्रकारोका उल्लेख मिलता है—अतरापरिनिर्वायी, उपहत्यपरिनिर्वायी, असस्कारपरिनिर्वायी, ससस्कारपरिनिर्षायी और ऊर्ध्वस्रोत-अकनिष्ठगामी।

अनादान = अपरिग्रह

अनुत्तर = जिससे उत्तम कोई दूसरा न हो।

अनुशय = मल

अभिज्ञा = दिव्य ज्ञान

असपत्न = जिसका कोई प्रतिस्पर्धी या शत्रु न हो।

असमाहित = समाधिरहित, अशात

अष्टागिकमार्ग = आठ अगोवाला मार्ग, आठ अग ये है—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् सकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। इसे 'मध्यमा प्रतिपदा' भी कहते है।

आयतन	=	आश्रय, बौद्ध दर्शन मे आयतन दो प्रकार के है—आध्यात्मिक या आतरिक और बाह्य। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन ये आध्यात्मिक आयतन है। और, रूप, शब्द, गध, रस, स्पर्श और धर्म ये बाह्य आयतन है।
आर्यसत्य	=	उत्तमसत्य, जो चार प्रकार का है—दु ख, दु खसमुदय, दु खनिरोध और दु खनिरोध का मार्ग।
आस्रव	=	मल, प्रवाह
आर्हत	=	अर्हत का धर्म
उपेक्षा	=	उदासीनता; तीसरा बोध्यग
उपोसथ	=	उपवास का दिन
ओघ	=	भवसागर, ससार-प्रवाह
अत	=	अतिसीमा
ऋद्धिपाद	=	असाधारण क्षमता या दिव्य शक्ति
कषाय	=	मल
कुशल	=	पुण्य, सत्कर्म
कोश	=	पुनर्जन्म देनेवाला कर्म
छद	=	राग
दात दान्त	=	जिसने इद्रियो का सपूर्णतया दमन कर लिया है।
दौर्मनस्य	=	दुर्मनता, मानसिक दु ख
परिदेव	=	रोना-विलपना

पचोपादान	=	पाच अभिनिवेश, जो ये हैं— रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार और विज्ञान ।
प्रतिपत्ति	=	प्राप्ति, मार्ग
प्रधान	=	प्रयत्न; निर्वाणसबधी प्रयत्न ।
प्रविचय	=	सग्रह, अन्वेषण
प्रव्रज्या	=	सन्यास
प्रश्रब्धि	=	शाति, एक बोध्यग
बोध्यग	=	निर्वाण-ज्ञान के अग, जो सात है—स्मृति, धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा ।
मार	=	विपय
रति	=	सुखोपभोग के पदार्थो मे आसक्ति
वितर्क	=	मिथ्या सकल्प
विज्ञान	=	चित्त की धारा
वीर्य	=	उद्योग, मनोबल
वृषल	=	चाडाल
वेदना	=	इद्रिय और विपय के एकसाथ मिलने के बाद चित्त मे जो दु ख-सुख आदि विकार उत्पन्न होता है उसे वेदना कहते हैं ।
व्यापाद	=	क्रोध
शासन	=	शिक्षा, धर्म
शास्ता	=	गुरु
शीलव्रत	=	श्रमण सन्यासी के आचार और व्रत
श्रावक	=	गृहस्थ

श्रोतावधान	=	श्रद्धा और ध्यानपूर्वक सुनना
समाहित	=	एकाग्र
सबोधि	=	परम ज्ञान, मोक्ष-ज्ञान
सयोजन	=	मन का बधन
सज्ञा	=	इद्रिय और विषय के एकसाथ मिलने पर, अनुकूल-प्रतिकूल वेदना के वाद 'यह अमुक विषय है' इस प्रकार का जो ज्ञान होता है उसे सज्ञा कहते हैं।
स्कन्ध	=	समुदाय

सस्ता-साहित्य-मण्डल के

प्रकाशन

१—दिव्य-जीवन ।=)
२—जीवन-साहित्य (दो भाग) १।)
३—तामिलवेद ॥)
४—भारत में व्यसन और व्यभिचार ॥=)
५—सामाजिक कुरीतियाँ (जब्त : अप्राप्य) ॥)
६—भारत के स्त्री-रत्न (दो भाग) १॥-) (तीसरा भाग) १)
७—अनोखा (विक्टर ह्यूगो) १।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ॥=)
९—यूरोप का इतिहास २)
१०—समाज-विज्ञान १॥)
११—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र ॥=)
१२—गोरों का प्रभुत्व ॥=)
१३—चीन की आवाज (अप्राप्य) ।-)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह १।)
१५—विजयी बारडोली २)
१६—अनीति की राह पर ।=)
१७—सीताजी की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या-शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग (अप्राप्य) ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यवहारिक सभ्यता ॥)
२२—अँधेरे में उजाला ॥)
२३—स्वामीजी का बलिदान (अप्राप्य) ।-)
२४—हमारे जमाने की गुलामी (जब्त : अप्राप्य) ।)
२५—स्त्री और पुरुष ॥)
२६—घरों की सफ़ाई ।)
२७—क्या करें ? (दो भाग) १॥=)
२८—हाथ की कताई-बुनाई (अप्राप्य) ॥=)
२९—आत्मोपदेश ।)
३०—यथार्थ आदर्श जीवन (अप्राप्य) ॥-)
३१—जब अंग्रेज नहीं आये थे- ।)
३२—गंगा गोविंदसिंह (अप्राप्य) ॥=)
३३—श्रीरामचरित्र १।)

३४—आश्रम-हरिणी ।)
३५—हिन्दी-मराठी-कोष २)
३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
३७—महान् मातृत्व की ओर ॥।=)
३८—शिवाजी की योग्यता (छप रही है) ॥)
३९—तरंगित हृदय (छप रही है) ॥)
४०—नरमेघ १॥)
४१—दुखी दुनिया ॥)
४२—जिन्दा लाश ॥)
४३—आत्म-कथा (गांधीजी) दो खगड सजिल्द १॥)
४४—जब अग्रज आये (जब्त अप्राप्य) १।=)
४५—जीवन-विकास अजिल्द १)
सजिल्द १॥)
४६—किसानों का बिगुल (जब्त) =)
४७—फाँसी ? ॥)
४८—अनासक्तियोग तथा गीता-बोध (श्लोक-सहित) ।=)
अनासक्तियोग =)
गीताबोध— -)॥
४९—स्वर्ण-विहान (जब्त) ।=)
५०—मराठों का उत्थान पतन २॥)
५१—भाई के पत्र १॥) सजिल्द २)
५२—स्वगत— ।=)
५३—युग-धर्म (जब्तःअप्राप्य) १=)
५४—स्त्री-समस्या १॥।)
५५—विदेशी कपड़े का मुकाबला ॥=)
५६—चित्रपट ।=)
५७—राष्ट्रवाणी (अप्राप्य) ॥=)
५८—इंग्लैंड में महात्माजी १)
५९—रोटी का सवाल १)
६०—दैवी सम्पद् ।=)
६१—जीवन-सूत्र ॥।)
६२—हमारा कलंक ॥=)
६३—बुद्बुद् ॥)
६४—संघर्ष या सहयोग ? १॥)
६५—गांधी-विचार-दोहन ॥।)
६६—एशिया की क्रांति (जब्त) १॥।)
६७—हमारे राष्ट्रनिर्माता २॥)
सजिल्द ३)
६८—स्वतंत्रता की ओर— १॥)
६९—आगे बढ़ो ! ॥।)
७०—बुद्ध-वाणी ॥=)

पता—सस्ता-साहित्य-मण्डल, नया बाजार, दिल्ली ।